CARNEGIE INDIA

WORKING PAPER

एप्रिल 2023

अगले ताइवान जलडमरूमध्य संकट से पहले भारत को क्या करना चाहिए?

विजय गोखले

CARNEGIE ENDOWMENT FOR INTERNATIONAL PEACE INDIA

अगले ताइवान जलडमरूमध्य संकट से पहले भारत को क्या करना चाहिए?

विजय गोखले

इस वर्किंग पेपर का हिंदी में अनुवाद धीरज कुमार ने किया है।

© 2023 Carnegie Endowment for International Peace India. All rights reserved.

Carnegie does not take institutional positions on public policy issues; the views represented herein are those of the author(s) and do not necessarily reflect the views of Carnegie, its staff, or its trustees.

No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means without permission in writing from Carnegie India or the Carnegie Endowment for International Peace. Please direct inquiries to:

Carnegie Endowment for International Peace
Publications Department
1779 Massachusetts Avenue NW
Washington, D.C. 20036
P: + 1 202 483 7600
F: + 1 202 483 1840
CarnegieEndowment.org

Carnegie India
Unit C-5 & C-6, Edenpark,
Shaheed Jeet Singh Marg
New Delhi - 110016, India
P: + 011 4008687
CarnegieIndia.org

This publication can be downloaded at no cost at CarnegieIndia.org.

विषय वस्तु

सारांश	1
प्रस्तावना	3
भारत के लिए ताइवान जलडमरूमध्य में किसी भावी संघर्ष के निहितार्थ	5
1954-55 और 1958 के संकटों के दौरान भारत की ताइवान नीति	10
ताइवान जलडमरूमध्य में किसी भावी संकट के समय भारत के लिए विकल्प	17
निष्कर्ष	23
लेखक का परिचय	24
नोट्स	26

सारांश

अगले दो दशकों में, ताइवान का मुद्दा भारत-प्रशांत क्षेत्र में तेज़ी से महत्वपूर्ण बन सकता है। पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना (पीआरसी) ताइवान को मुख्य भूमि के साथ मिलाने के लिए ज़्यादा आक्रामक हो रहा है, और साथ ही इस लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ते हुए सैन्य क्षमता स्थापित कर रहा है। अपने आप को प्रमुख वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित करने की चीन की इच्छा को देखते हुए यह अव्यावहारिक लगता है कि इसके क्षेत्र का कोई हिस्सा इसके नियंत्रण से बाहर रहे। इस नियंत्रण को स्थापित करने की दिशा में संभावित प्रयासों से संयुक्त राज्य अमेरिका की ओर से प्रतिक्रिया हो सकती है, जिसका इस क्षेत्र और दुनिया पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा।

जहां तक अमेरिका का सवाल है, इस दिशा में पीआरसी का उठाया कोई भी कदम इस वैचारिक आधार को कमज़ोर कर देगा कि अमेरिका दुनिया भर में स्वतंत्रता और लोकतंत्र का रक्षक है, और उसकी विश्वसनीयता कम करेगा। यह अमेरिका की वैश्विक शक्ति के लिए एक भयंकर झटका भी हो सकता है। इस संदर्भ में, और दोनों देशों के लिए ताइवान के महत्व को देखते हुए, यह एक ऐसा मुद्दा है जो तेज़ी से बिगड़ सकता है, और भारत-प्रशांत क्षेत्र में यह चिंता का विषय बन सकता है। इसके अलावा, ताइवान पर कोई भी संघर्ष दुनिया भर की आर्थिक गिरावट के मुद्दे को पीछे छोड़ देगा, जो 2022 में रूस के यूक्रेन पर आक्रमण करने के बाद शुरू हुआ था। भले ही हालात टकराव तक ना पहुंचें, ताइवान पर चीनी दबाव ताइवान जलडमरूमध्य के माध्यम से होने वाले समुद्री यातायात की स्वतंत्रता और संचार के समुद्री रास्तों को बाधित कर सकता है और एशियाई भू-राजनीति और भू-अर्थशास्त्र के लिए इसके गंभीर नतीजे हो सकते हैं।

इस क्षेत्र में भारत के अच्छे-खासे भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक हितों और पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ इसके संबंधों के लंबे इतिहास को देखते हुए, भारत को इस मुद्दे पर निरंतर और सावधानीपूर्वक ध्यान देना चाहिए। इसके अलावा, अचानक पैदा हुई ऐसी स्थितियों पर प्रतिक्रिया के लिए एक नीति पर विचार किया जाना चाहिए और उसे लागू किया जाना चाहिए। यह शोध पत्र उस संभावित नीति पर ध्यानपूर्वक विचार करने की कोशिश करता है जिसे ताइवान जलडमरूमध्य में किसी बड़े संकट से पहले भारत अपना सकता है।

इस शोध पत्र के तीन हिस्से हैं। पहले हिस्से में भारत के लिए एक और ताइवान जलडमरूमध्य संकट के भू-राजनीतिक और भू-अर्थशास्त्रीय नतीजों का विश्लेषण किया गया है। वैसे तो इस बात का अंदाज़ लगाना मुश्किल है कि इससे भारत अर्थव्यवस्था को कितना वास्तविक नुकसान पहुंचेगा, यह साफ़ है कि इसका असर अर्थव्यवस्था के सभी अंगों पर पड़ेगा, और शायद यह असर इतना बड़ा हो कि भारत कई साल पीछे चला जाए। यह संकट भारत के भू-राजनीतिक हितों और राष्ट्रीय सुरक्षा पर भी असर डालेगा, इस बात को मद्देनज़र रखते हुए कि चीन वास्तविक नियंत्रण रेखा के साथ-साथ हिंद महासागर में भी अपनी आक्रामकता बढ़ा रहा है।

दूसरे हिस्से में इस आम धारणा के ख़िलाफ़ दलीलें दी गई हैं कि ताइवान जलडमरूमध्य में उच्च तनाव के पुराने मामलों के दौरान संकट प्रबंधन में भारत की कोई भूमिका नहीं थी। 1954-55 में पहला ताइवान जलडमरूमध्य संकट और 1958 में दूसरा ताइवान जलडमरूमध्य संकट खड़ा हुआ था। अमेरिका, ब्रिटेन और भारत में मौजूद अभिलेखीय सामग्री की मदद से, इस शोध पत्र में उपर्युक्त धारणा के अलावा इस सोच को भी दूर करने की कोशिश की गई है कि 1950 में जब भारत ने चीन के ताइवान पर दावे को मान्यता दे दी, तब से ताइवान मुद्दा भारत के लिए दिलचस्पी का नहीं रह गया है। इसके अलावा, इस शोध पत्र में उन संकटों से निपटने के भारत के तरीकों को ध्यान में रखते हुए नीति-निर्माण के लिए सबकों पर भी विचार किया गया है।

पत्र के तीसरे हिस्से में भारत के चीन को राजनयिक मान्यता देने के बाद से अब तक भारत-ताइवान संबंधों के इतिहास पर संक्षेप में नज़र दौड़ाई गई है। इसमें भारत की ताइवान नीति की समीक्षा की गई है। यह देखते हुए कि ताइवान जलडमरूमध्य में किसी युद्ध की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता, इस शोध पत्र में उन परिदृश्यों पर चर्चा की गई है जिनमें भारत खुद को पा सकता है और इन परिदृश्यों के जवाब में संभावित नीतियां क्या हो सकती हैं। इसमें सुझाव दिया गया है कि अमेरिका-चीन-ताइवान रणनीतिक त्रिकोण पर करीब से नज़र रखी जाए, ताइवान जलडमरूमध्य में किसी आकस्मिक स्थिति के प्रभावों के बारे में सरकार का व्यापक आकलन हो, और नीतिगत विकल्पों का मूल्यांकन हो। यह सुझाव भी दिया गया है कि ताइवान के सवाल पर भारत को चीन और अमेरिका की उससे उम्मीदों का पता लगाना चाहिए, साथ ही अहम साझीदारों के साथ परामर्श करना चाहिए।

प्रस्तावना

अगले दो दशकों के दौरान ताइवान का प्रश्न भारत-प्रशांत क्षेत्र के लिए बेहद महत्वपूर्ण बन सकता है। चीनी गणवादी गणराज्य (पीआरसी) ताइवान को मुख्य भूमि के साथ एकीकृत करने को लेकर ज़्यादा मुखर होता जा रहा है। चीन की संभावित कार्रवाई पर अमेरिका की तरफ से प्रतिक्रिया हो सकती है जिसके अंतरराष्ट्रीय प्रभाव महत्वपूर्ण हो सकते हैं। सेंटर फॉर स्ट्रैटेजिक एंड इंटरनेशनल स्टडीज़ (सीएसआईएस) द्वारा हाल ही में ताइवान पर चीन-अमेरिकी संघर्ष को लेकर कराए एक अमेरिकी अध्ययन में कहा गया है कि एक वक़्त अमेरिका और चीन के बीच किसी सीधे संघर्ष की बात सोची भी नहीं जा सकती थी, लेकिन अब यह राष्ट्रीय सुरक्षा समुदाय के बीच चर्चा का एक आम विषय बन गया है।[1]

दुनिया की दो सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाएं आपस में इस तरह गुंथी हैं और एक-दूसरे पर निर्भर हैं कि इस वजह से ताइवान के मुद्दे पर किसी युद्ध होने की संभावना ना के बराबर होने के निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है। हालांकि, आपसी निर्भरता और पारिवारिक बंधनों के बावजूद दुनिया में युद्ध हुए हैं, जैसा कि पहले विश्व युद्ध ने दिखाया था। और ताइवान का प्रश्न कोई सामान्य अनसुलझी भू-राजनीतिक समस्या नहीं है। यह खतरनाक है क्योंकि यह एक ऐसे क्षेत्र में है जहां दो सबसे बड़ी वैश्विक शक्तियों - चीन और संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रतिष्ठा और हित सीधे तौर पर दांव पर हैं। खुद को प्रमुख विश्व शक्ति के रूप में स्थापित करने का प्रयास कर रहे चीन के लिए यह असहनीय और राष्ट्रीय अपमान का विषय है कि जिसे वह अपना क्षेत्र मानता है, उसका एक हिस्सा अभी भी उसके नियंत्रण से "स्वतंत्र" बना हुआ है।[2] संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए, ताइवान पर चीन का जबरन कब्ज़ा इस धारणा की जड़ पर हमला होगा कि वह दुनिया भर में स्वतंत्रता और लोकतंत्र का रक्षक है।[3] यह संयुक्त राज्य अमेरिका की वैश्विक शक्ति के लिए एक विनाशकारी झटका हो सकता है। दोनों देशों के लिए ताइवान के महत्व को देखते हुए, यह भारत के लिए खतरनाक है कि उसके पड़ोस भारत-प्रशांत क्षेत्र में ऐसा संवेदनशील इलाका है।

2023 म्युनिख सुरक्षा सम्मेलन में जारी एक रिपोर्ट में कहा गया है, "भले ही इस बारे में अलग-अलग विचार हैं कि क्या बीजिंग ने ताइवान के ख़िलाफ़ संभावित कार्रवाई के लिए समयसीमा तय कर ली है, क्या वह समयसीमा बदल गई है, और चीन की सेना ने अपनी क्षमता बढ़ाने के लक्ष्यों की दिशा में कितनी प्रगति की है, इस बारे में ज़्यादातर एक राय है कि बीजिंग 2027 तक ताइवान पर सफलतापूर्वक हमला करने (अमेरिकी प्रतिरोध के बावजूद) की क्षमता हासिल करने की उम्मीद रखता है।"[4] और, 2021 में, अमेरिका-चीन आर्थिक और सुरक्षा समीक्षा आयोग की अमेरिकी कांग्रेस को दी गई सालाना रिपोर्ट में निष्कर्ष निकाला गया कि चीन के पास या तो ताइवान पर हमला करने की शुरुआती क्षमता थी या वह इसे हासिल करने के करीब था।[5] इसलिए, ताइवान का भविष्य इस इलाके के लिए अहम होगा, और चीन और ताइवान के बीच संघर्ष को शुरू होने से पहले रोकना इकलौती चुनौती होगी, क्योंकि म्युनिख सुरक्षा सम्मेलन 2023 की रिपोर्ट में कहा गया है कि इस संघर्ष के परिणाम के सामने यूक्रेन युद्ध के वैश्विक आर्थिक परिणाम मामूली साबित होंगे।

यहां तक कि अगर अमेरिका और चीन के बीच वास्तविक संघर्ष नहीं भी होता है, तो भी ताइवान पर चीन के बल प्रयोग से ताइवान जलडमरूमध्य में आवाजाही की स्वतंत्रता बाधित हो सकती है, और इसका एशियाई भू-राजनीति और भू-अर्थशास्त्र पर गंभीर, और संभवतः विनाशकारी प्रभाव हो सकता है। फरवरी 2023 में फॉरेन अफेयर्स के लिए लिखे एक लेख में, इवान फेगेनबाम और एडम स्ज़ुबिन ने लिखा कि बीजिंग को सिर्फ़ यह नहीं मान लेना चाहिए कि ताइवान पर चीनी आक्रमण के बाद पश्चिमी देश कभी भी आर्थिक झटके का जोखिम नहीं उठाएंगे या ये प्रमुख देशों पर केवल मामूली प्रतिबंध लगाएंगे।[6] इसी तरह, पश्चिमी देशों के लिए भी यह मान लेना उतना ही भोलापन होगा कि चीन ताइवान के ख़िलाफ़ बल प्रयोग से केवल इसलिए बचना चाहेगा क्योंकि उसे डर है कि पश्चिम आर्थिक दंड लगाएगा। इसलिए, आने वाले दशक में ताइवान जलडमरूमध्य में क्या होने की संभावना है, यह पूरे भारत-प्रशांत क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा का केंद्र बिंदु बन गया है।

भारत एक प्रमुख और बड़ी आबादी वाला एशियाई देश है जिसका पूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ संपर्क और संबंधों का लंबा इतिहास रहा है। पिछले दशकों में, भारत ने एसोसिएशन ऑफ साउथईस्ट एशियन नेशंस (आसियान), पूर्वी एशियाई देशों, ऑस्ट्रेलिया, और प्रशांत द्वीपीय देशों के साथ मज़बूत राजनीतिक संबंध बनाए हैं। यह आसियान-केंद्रित तंत्र में एक सक्रिय भागीदार है और साथ ही उत्तरी हिंद महासागर से लेकर पश्चिमी प्रशांत महासागर तक फैले संचार के समुद्री गलियारों में एक महत्वपूर्ण सुरक्षा प्रदाता भी है। हाल ही में, भारत ने कई देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौते किए हैं और इस क्षेत्र में भारत के ठोस व्यापारिक, निवेश और सांस्कृतिक हित हैं जिनका भारत की अर्थव्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव पड़ता है। भारत के ठोस भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक हित इस बात को ज़रूरी बना देते हैं कि ताइवान के प्रश्न पर सावधानीपूर्वक और लगातार ध्यान दिया जाए और किसी भी तरह की आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिए एक उचित नीति पर विचार किया जाए और उसे लागू किया जाए। इस वर्किंग पेपर का उद्देश्य उस संभावित नीति पर विचार करना है जिसे भारत ताइवान जलडमरूमध्य में किसी बड़े संकट के आने से पहले अपना सकता है।

इस शोध पत्र का पहला भाग भारत के लिए ताइवान जलडमरूमध्य के एक और संकट के संभावित भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक प्रभावों की पड़ताल करता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को होने वाले वास्तविक नुकसान का अनुमान लगाना मुश्किल है, लेकिन यह साफ़ है कि यह अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करेगा और संकट का प्रभाव भारत को कई वर्षों तक पीछे धकेलने के लिए पर्याप्त हो सकता है। अगर ताइवान चीन के साथ एकीकृत होता है तो भू-राजनीतिक रूप से, भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सीधे और साथ ही साथ व्यापक क्षेत्रीय संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रभाव होंगे। इसलिए ताइवान जलडमरूमध्य में संघर्ष या तनाव भारत के हित में नहीं है। भारत-प्रशांत क्षेत्र में बढ़ते हितों के साथ एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय खिलाड़ी के रूप में, भारत तनाव को कम करने और युद्ध को रोकने की कोशिश में अपनी भूमिका निभाने से बच नहीं सकता है। नीति निर्माताओं को यह सोचने की ज़रूरत है कि क्या भारत किसी संकट को टालने में कोई भूमिका निभा सकता है, साथ ही यह भी सोचना होगा कि ताइवान जलडमरूमध्य में बड़े तनाव या किसी बड़े संकट की तैयारी के लिए किस तरह की संभावित कार्रवाई करने की ज़रूरत हो सकती है, अकेले या फिर समान विचारधारा वाले देशों के साथ मिलकर।

एक आम धारणा है कि भारत ने ताइवान जलडमरूमध्य में उच्च तनाव के पुराने मामलों में संकट प्रबंधन में कोई भूमिका नहीं निभाई। पहले के संकटों में भारत की ऐतिहासिक स्थिति की बेहतर समझ के लिए, इस शोध पत्र का दूसरा भाग 1954-55 और 1958 में ताइवान जलडमरूमध्य संकट के दौरान भारत के राजनयिक अनुभव और कामकाज पर नज़र डालता है। भारतीय, ब्रिटिश और अमेरिकी अभिलेखीय सामग्रियों की मदद से इस शोध पत्र की कोशिश है कि इस आम धारणा को दूर किया जाए कि भारत ने उस दौरान कोई भूमिका नहीं निभाई और 1950 में ताइवान पर चीन के दावे को मान्यता देने के बाद यह मुद्दा उसके लिए रुचि का विषय नहीं रहा। इससे उलट, सच्चाई यह है कि ताइवान 1950 के दशक में भारत की विदेश नीति निर्माण में एक महत्वपूर्ण पहलू था, और भारत अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर इन संकटों को हल करने के लिए प्रमुख खिलाड़ियों (कुओमिन्तांग को छोड़कर) के साथ कूटनीतिक रूप से जुड़ा।

ताइवान जलडमरूमध्य संकट से निपटने के भारत के पिछले तरीके भविष्य की भारतीय नीति को तैयार करने के लिए सीख दे सकते हैं। उपलब्ध ऐतिहासिक अभिलेखों के व्यापक विश्लेषण से पता चलता है कि भारत ताइवान जलडमरूमध्य में चीन और अमेरिका के बीच संघर्ष की संभावना के बारे में बेहद चिंतित था, और इस तरह की चिंताओं ने भारत सरकार को दोनों पक्षों के साथ कूटनीतिक पहल करने के लिए प्रेरित किया। भारत की मंशा एक और एशियाई संघर्ष-बिंदु (कोरिया और वियतनाम के अलावा) को दूर रखने की थी जो शांति और स्थिरता को खराब कर सकता है और दोनों देशों के साथ भारत के संबंधों के लिए विदेश नीति पर असर डाल सकता है। इन दोनों देशों के साथ संबंधों को भारत अपनी सुरक्षा और विकास के लिए ज़रूरी मानता है।

इस शोध पत्र का अंतिम भाग इस अनुमान पर आधारित है कि हालांकि ज़रूरी नहीं है कि ताइवान जलडमरूमध्य में युद्ध हो, लेकिन इसकी आशंका से इन्कार भी नहीं किया जा सकता है। इसलिए, आने वाले दशक में ताइवान जलडमरूमध्य में उत्पन्न होने वाली किसी भी आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिए भारत को नीतियां विकसित करनी चाहिए। सुझावों का सार यह है कि एक और ताइवान जलडमरूमध्य संकट के भारत, विशेष रूप से इसकी अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव के समग्र-सरकारी मूल्यांकन या मॉडलिंग में अब और देरी नहीं की जानी चाहिए। नतीजों के आधार पर, भारत को जोखिम कम करने के लिए आकस्मिक स्थिति से निपटने की योजना तैयार करनी चाहिए। इसके साथ ही, राष्ट्रीय सुरक्षा नीति बनाने वाली संस्थाओं को ताइवान जलडमरूमध्य की स्थिति के बारे में अधिक जागरूक रहने की ज़रूरत है। यह निर्भर करेगा नियमित निगरानी और लगातार मूल्यांकन पर, साथ ही रणनीतिक संदेश देने के लिए उस नीति की दिशा पर, जो भारत ले सकता है या फिर इस संदर्भ में अपने राष्ट्रीय हित को आगे बढ़ाने के लिए उस कूटनीतिक कार्रवाई पर, जो भारत कर सकता है।

भारत के लिए ताइवान जलडमरूमध्य में किसी संभावित संघर्ष के निहितार्थ

कई दशकों से ताइवान का मुद्दा पूर्वी एशिया में संघर्ष का एक संभावित बिंदु रहा है, लेकिन लगता है कि युद्ध का खतरा अब तेज़ी से बढ़ा है। अगस्त 2022 में, अमेरिकी प्रतिनिधि सभा की तत्कालीन अध्यक्ष नैंसी पेलोसी की यात्रा एक महत्वपूर्ण मोड़ थी। चीन ने आक्रामक सैन्य व्यवहार के साथ प्रतिक्रिया व्यक्त की। 2023 यूएस नेशनल डिफेंस अथॉराइज़ेशन एक्ट (एनडीएए) में ताइवान की रक्षा क्षमताओं और ताइवान के लिए कूटनीतिक समर्थन को बढ़ावा देने के नए कदम शामिल हैं। इससे अमेरिका-चीन रिश्तों में आई ढांचागत समस्या का संकेत मिलता है। चीन-अमेरिका रिश्तों की मौजूदा हालत और 1950 के दशक में उनके रिश्तों की कुछ विशेषताएं मिलती-जुलती हैं। एक ताज़ा अध्ययन के मुताबिक, चीन सोचता है कि एक बार फिर अमेरिका ने ताइवान को हथियार बनाकर चीन को कमज़ोर करना और बांटना शुरू कर दिया है। ताइवान में आंतरिक राजनीतिक रूझानों (ताइवानी पहचान का दावा) ने इन चिंताओं को बढ़ा दिया है। अमेरिकी पक्ष की बात करें तो, एक बार फिर से ज़्यादा जोखिम उठाने को तैयार नेता (तब माओत्से तुंग और अब शी जिनपिंग) के नेतृत्व में, ताइवान जलडमरूमध्य में अमेरिका से टकराने की चीनी इच्छा वॉशिंगटन को यह

सोचने को मज़बूर कर सकती है कि पश्चिमी प्रशांत में अमेरिका को कमज़ोर करने और इसके सहयोगियों के बीच विभाजन पैदा करने के लिए ताइवान को हासिल करना चीन का तरीका है।[7] इसलिए, दोनों देशों के लिए, ताइवान जलडमरूमध्य अस्तित्व की समस्या है।

दोनों के लिए, ताइवान "महाशक्ति" होने का प्रतीक है। चीन का मानना है कि मुख्य भूमि के साथ ताइवान का पुनर्विलय विदेशी ताकतों के हाथों चीन के अपमान का प्रतीकात्मक अंत और साथ ही भारत-प्रशांत क्षेत्र में चीनी शताब्दी की सच्ची शुरुआत होगा। अमेरिका मानता है कि ताइवान का अस्तित्व जारी रहना अधिनायकवाद के ख़िलाफ़ लोकतांत्रिक मज़बूती और साथ ही स्वतंत्र विश्व के नेता के रूप में अमेरिका के वैश्विक प्रभाव के बने रहने का एक प्रतीक है।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि 1950 के दशक और आज के हालात में बुनियादी अंतर हैं। पहला अंतर है कि दोनों देशों की ताक़त का अंतर बेहद कम हो गया है।[8] दूसरा, एक-दूसरे पर उनकी आर्थिक निर्भरता की जड़ें काफी गहरी हैं। तीसरा, ताइवान ने मुख्य भूमि पर फिर से कब्ज़ा करने के च्यांग काई-शेक के सपने को छोड़ दिया है। ये वजहें हैं कि रणनीतिक विशेषज्ञों का एक दूसरा समूह मानता है कि अमेरिका को बीजिंग के इरादों के बारे में बारीक समझ विकसित करनी चाहिए और अपने-आप यह नहीं मान लेना चाहिए कि शी जिनपिंग ताइवान पर हमला करने की योजनाओं में तेज़ी ला रहे हैं।[9] लेकिन, ताइवान के प्रति चीन के असली इरादों को लेकर कुछ भी साफ़ नहीं है, क्योंकि चीन ने रणनीतिक अस्पष्टता को बनाए रखा है और ताइवान को फिर से मिलाने का लक्ष्य हासिल करने के लिए ताक़त का इस्तेमाल करने के सिद्धांत को कभी छोड़ा नहीं है।

यह मुमकिन है कि रूस-यूक्रेन युद्ध से चीन यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि चूंकि ताइवान अमेरिका के लिए अस्तित्व का सवाल नहीं है (जितना यह चीन के लिए है), वॉशिंगटन अपनी सेना को सीधे तौर पर उतारने को तैयार नहीं हो सकता है, और चीन को लग सकता है कि उसके पास ताइवान के मामले में कदम बढ़ाने का एक मौका है। ऐसी परिस्थितियों में, गलत हिसाब लगाने की संभावना ज़्यादा है क्योंकि अमेरिका के लिए यूक्रेन की तुलना में ताइवान का एक अलग महत्व है। चीन का ताइवान पर कब्ज़ा पश्चिमी प्रशांत में संतुलन को बदल सकता है, प्रथम द्वीप श्रृंखला घेरे को तोड़ सकता है, और भारत-प्रशांत क्षेत्र में अमेरिकी श्रेष्ठता को खत्म कर सकता है। इन वजहों से, चीन के लिए यह मान लेना गलत होगा कि ताइवान पर उसका वैध दावा और ज़्यादातर देशों की इस दावे को मान्यता अमेरिका के सीधे दखल को रोकने के लिए पर्याप्त होगी।

अगर चीन की सेना के आधुनिकीकरण की हालिया दिशा को चीन की इस चिंता का कोई संकेत माना जाए कि अमेरिका उसके एकीकरण में बाधा डालेगा, तब यह मुमकिन है कि चीन ताइवान को मुख्य भूमि से मिलाने के लंबे समय से चले आ रहे लक्ष्य को गति देने की कार्रवाइयों पर विचार कर सकता है। अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडेन[10] और अमेरिकी राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जेक सुलीवन[11] के बयानों से संकेत मिलता है कि अमेरिकी सेना सैन्य मदद देगी अगर ताइवान पर हमले की कोशिश होती है। इन बयानों ने चीन को नाराज़ किया है लेकिन फिर भी चीन की बयानबाज़ी रुकी नहीं है। बाइडेन के साथ 28 जुलाई, 2022 को फोन पर हुई बातचीत में शी ने अमेरिका को "किसी भ्रम में" ना रहने को कहा और यह भी जोड़ा कि "जो आग से खेले वे इससे बर्बाद हो जाएंगे,"[12] और 7 मार्च 2023 को बीजिंग में चौदहवें नेशनल पीपुल्स कांग्रेस के पहले सत्र के दौरान एक संवाददाता सम्मेलन में चीन के विदेश मंत्री किन गांग ने ताइवान का जिक्र "खतरे की पहली रेखा जिसे चीन-अमेरिका रिश्तों में पार नहीं करना चाहिए"[13] के रूप में किया। अगर भारत-प्रशांत क्षेत्र में अपने गठबंधनों को मज़बूत करने और नई साझेदारियां विकसित करने के हालिया अमेरिकी प्रयास अमेरिकी चिंताओं का कोई संकेत देते हैं कि चीन का इरादा उसे कोई कदम उठाने पर मजबूर करने का है, तो यह मुमकिन है कि अमेरिका ताइवान की क्षमता बढ़ाने के उपाय अपना सकता है ताकि ताइवान पर कब्ज़ा करने की चीन की क्षमता का प्रतिरोध किया जा सके। अमेरिकी सामरिक समुदाय और नीति मंडल इस सवाल पर बहस कर रहे हैं, यही अपने-आप में साफ़ इशारा है कि ताइवान जलडमरूमध्य के एक और (चौथे) संकट की संभावना मुख्य धारा की बहस का हिस्सा है।

ताइवान जलडमरूमध्य के संभावित चौथे संकट के वास्तविक आकार और दायरे का अनुमान लगाना मुश्किल है। कई प्रकाशनों ने अलग-अलग परिदृश्यों का खाका खींचा है, जिनमें सीधे हमले से लेकर ताइवान की घरेलू राजनीति का अंदरूनी विनाश तक शामिल हैं।[14] विशेषज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि अमेरिका-चीन संघर्ष के विनाशकारी वैश्विक परिणाम होंगे। लेकिन, जहां तक भारत का सवाल है, वास्तविक संघर्ष (ग्रे-ज़ोन युद्ध) से

कम कार्रवाई भी होती है तो इसके गंभीर नतीजे होंगे और इसलिए, ज़रूरत है कि पहले से योजना और तैयारी की जाए। चीन के ग्रे-ज़ोन और धमकाने वाले विकल्पों के दायरे में शामिल हैं बड़े पैमाने पर साइबर हमले जो ताइवान की अर्थव्यवस्था को पंगु कर दें, साथ ही उसकी कोशिश होगी कि ताइवान को अलग-थलग करके उसे निर्यात के लिए सामान भेजने या आयात के लिए सामान मंगाने से रोक दे। इसका मकसद ताइवान की सारी खाद्य आपूर्ति को पूरी तरह काटना नहीं होगा बल्कि उसके चारों तरफ के हवाई और समुद्री रास्तों पर नियंत्रण करके विमानों और जहाज़ों की आवाजाही को काबू में करना होगा ताकि दिखाया जा सके कि असली संप्रभुता किसकी है।[15] भले ही इसके नतीजे में कोई बड़ी लड़ाई ना छिड़ें, पश्चिमी देश इसकी जवाबी कार्रवाई (प्रतिबंध लगाने समेत) कर सकते हैं ताकि चीन को जबरन ताइवान पर कब्ज़ा करने से दूर रखा जा सके। इस जवाबी कार्रवाई के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभावों के गंभीर नतीजे सप्लाई चेन और शिपिंग पर पड़ेंगे, जिनसे भारत बच नहीं पाएगा। भले ही वास्तविक युद्ध हो या नहीं, इसका जोखिम भारत के लिए ताइवान जलडमरूमध्य में हालात पर सावधानी से नज़र रखना ज़रूरी बना देता है ताकि ऐसे रास्ते तैयार किए जा सकें जिनमें वह तनाव को संघर्ष में बदलने से रोकने के लिए कूटनीतिक भूमिका निभा सके, साथ ही संघर्ष के खतरों को देखते हुए अचानक पैदा हुई परिस्थिति का सामना करने के लिए योजनाएं बना सके।

वे भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक ज़रूरतें क्या हैं जो ताइवान जलडमरूमध्य में हालात को लेकर भारत के नज़रिए को आकार दे सकती हैं?

भू-राजनीतिक रूप से, भारत की महत्ता बढ़ी है क्योंकि भारत-प्रशांत क्षेत्र में इसकी अर्थव्यवस्था और व्यापार का विस्तार हुआ है और अभी भी हो रहा है। इसकी 'एक्ट ईस्ट' पॉलिसी ने मलक्का जलडमरूमध्य के पूर्व में जापान तक क्षेत्रीय भू-राजनीति में नई रुचि पैदा की है। भारत ने आसियान, जापान, दक्षिण कोरिया, और महासागरीय देशों के साथ मज़बूत राजनीतिक संबंध बनाए हैं, जिनमें से कई देशों के साथ भारत ने इस क्षेत्र में दीर्घकालिक शांति और स्थिरता की इच्छा साझा की है। शांति स्थापित करने के उद्देश्य के साथ भारत बहुपक्षीय तंत्रों, जैसे ईस्ट एशिया समिट (ईएएस), आसियान रीजनल फोरम (एआरएफ), आसियान डिफेंस मिनिस्टर्स मीटिंग प्लस (एडीएमएम-प्लस), और क्वॉड में शामिल हुआ है। जून 2018 में सिंगापुर में शांग्रीला डायलॉग में भारत के प्रधानमंत्री द्वारा पेश किए गए इंडो-पैसिफिक विज़न का मतलब यह भी है कि भारत की रणनीतिक दिशा मुक्त समुद्र (जो किसी देश के नियंत्रण में नहीं आता) की तरफ मुड़ गई है,[16] जहां भारत क्षेत्रीय विकास का इंजन बन रहा है, समुद्री रास्तों पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार और नौवहन के लिए सुरक्षा दे रहा है, और उत्तरी हिंद महासागर में आपदाओं पर सबसे पहले कार्रवाई कर रहा है। भारत का भविष्य एक स्वतंत्र, मुक्त, और नियम-आधारित भारत-प्रशांत क्षेत्र के साथ-साथ इस इलाके में लंबी अवधि तक स्थिरता, शांति और सुरक्षा के बने रहने में निहित है।

चीन के उदय से इस क्षेत्र के साथ-साथ भारत के आर्थिक विकास को भी फायदे हैं। हालांकि, आस-पड़ोस और नज़दीकी क्षेत्रों में चीन का हालिया व्यवहार और हरकत ऐसी रही है कि भारत-प्रशांत के सभी उप-भौगोलिक क्षेत्रों में, अलग-अलग स्तर की चिंताएं उभर आई हैं। चीन एक दबंग विदेश और राष्ट्रीय सुरक्षा नीति के माध्यम से प्रमुख शक्ति बनना चाहता है, और इस लक्ष्य में अमेरिकी प्रभाव को कम करना, और हो सके तो खत्म करना शामिल है। इसके नतीजे में पैदा हुए भू-राजनीतिक तनाव ने सकारात्मक रूझानों पर असर डाला है और क्षेत्रीय हालात को तनाव और संघर्ष के लिए अधिक संवेदनशील बना दिया है।

भारत-प्रशांत क्षेत्र के अलग-अलग हिस्सों में क्षेत्रीय तनावों और बढ़ी हुई चिंताओं के अलावा, भारत चीन के साथ अतीत के मुद्दों का भी सामना कर रहा है। चीन के साथ भारत की 3,500 किलोमीटर लंबी सरहद है जिसे चीन विवादित मानता है और दोनों देशों के बीच 1962 में इस मुद्दे पर युद्ध हो चुका है। अब तक, दोनों पक्ष कई बार बातचीत करने के बावजूद अपनी-अपनी संतुष्टि के साथ इस मुद्दे को सुलझाने में नाकाम रहे हैं। वास्तविक नियंत्रण सीमा (एलएसी)- जहां दोनों देशों की सेनाएं तैनात हैं- भी विवादित है, और हाल ही में, चीनी सेना ने यथास्थिति को सैन्य बल से बदलने की कोशिश की है। यह कोशिश उन समझौतों का उल्लंघन है जिनमें दोनों पक्षों ने एक-दूसरे को वचन दिया है कि वे ताक़त के ज़ोर से ऐसा नहीं करेंगे। चीन का अपनी सेना को तेज़ी से नए सिरे से हथियारबंद करना और अपनी दक्षिणी-पश्चिमी सीम पर सुरक्षा संबंधी गतिविधियां बढ़ाना और बुनियादी ढांचा तैयार करना भारत के लिए एक सैन्य चुनौती पेश करता है। यह चुनौती विकट हो जाती है क्योंकि एलएसी पर स्पष्टता के लिए चीन अनिच्छुक दिखता है और साथ ही वो सीमा पर शांति के लिए रज़ामंदी के उपायों को पूरी तरह से मानता नहीं है। चीन का नया सुरक्षा दृष्टिकोण

इसकी सुरक्षा परिधि को फिर से परिभाषित भी करता है और इसमें चीन के नज़दीकी इलाकों (इसकी क्षेत्रीय परिधि से परे) को शामिल किया गया है, जिसका मतलब है कि कई शताब्दियों में पहली बार, चीन हिंद महासागर में बड़े पैमाने पर तैनात रहने की कोशिश में लगा है। भारत एक साथ अपनी उत्तरी सीमा पर सीधी चुनौती के साथ-साथ दक्षिणी सीमा पर चीन के साथ कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहा है। यह रणनीतिक "निचोड़" भारत के लिए भू-राजनीतिक लागत को बढ़ा सकता है। चीन की पुनर्एकीकरण योजनाओं का भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा से नज़दीकी संबंध है।

यह नहीं भूलना चाहिए कि 1950 के दशक के उत्तरार्ध में, भारत से पूर्वी एशिया में बदलते समीकरणों को समझने में बड़ी चूक हो गई क्योंकि इसने ताइवान जलडमरूमध्य में हो रही गतिविधियों पर गंभीरता से ध्यान देना बंद कर दिया था।[17] 1959 तक, जब ताइवान जलडमरूमध्य में चीन के खतरे से ज़्यादा बड़ा मुद्दा हो गया क्यूबा पर सोवियत संघ का खतरा, तब चीन की मुख्य भूमि पर च्यांग काई शेक की हमले की योजनाओं के प्रति अमेरिका की सहनशीलता कम हो गई और उसने चीन के प्रति अपने बैर में ढील दे दी। अमेरिका की प्राथमिकताओं में बदलाव की वजह से, 1962 के मध्य में, जब क्यूबा के मसले पर अमेरिका-सोवियत संघ तनाव अपने चरम पर थे, अमेरिका ने चीन (पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना) को बताया कि "मुख्य भूमि पर जीआरसी (गवर्नमेंट ऑफ दि रिपब्लिक ऑफ चाइना) के किसी हमले को समर्थन देने का अमेरिकी सरकार का कोई इरादा नहीं था।"[18] इससे दो मोर्चों पर संघर्ष (ताइवान जलडमरूमध्य में अमेरिका के साथ और अपनी दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर भारत के साथ) की चीन की गहरी चिंता कम हो गई। यह सभी विशेषज्ञ स्वीकार करते हैं कि चीन को अमेरिका से मिले इस आश्वासन ने उसके लिए जोखिम को काफी कम कर दिया और बाद में चीन के भारत के साथ सीमा युद्ध छेड़ने की बड़ी वजहों में यह एक था।[19]

1950 के दशक से एक संभावित सबक यह सीखा जा सकता है कि अगर ताइवान जलडमरूमध्य में हो रही गतिविधियों पर करीब से नज़र नहीं रखी जाती है, तब हो सकता है कि चीन और अमेरिका एक बार फिर से अस्थायी रूप से आपसी मनमुटाव दूर कर सकते हैं, और चीन सैन्य दृष्टिकोण से भारत की तरफ अपना ध्यान मोड़ने के लिए ज़्यादा आज़ादी महसूस कर सकता है और अधिक सैन्य दुस्साहस करने की इच्छा रख सकता है। इसलिए, एक भू-राजनीतिक दृष्टिकोण से, कम से कम अगले दो दशकों तक ताइवान जलडमरूमध्य में शांति और यथास्थिति का बने रहना भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा हितों के लिए उपयुक्त है।

भू-राजनीतिक अनिवार्यताओं के अलावा, नई और मज़बूत भू-आर्थिक आवश्यकताएं हैं जिनके लिए ताइवान के सवाल पर भारत को बहुत नज़दीक से ध्यान देने की ज़रूरत है। 1950 के दशक में, भारत की व्यावसायिक निर्भरता कोलकाता के पूर्व में बसे देशों पर तुलनात्मक रूप से कम महत्वपूर्ण थी, अगर ताइवान जलडमरूमध्य में युद्ध की वजह से वैश्विक व्यापार में व्यवधान के असर के संदर्भ में देखा जाए। इस वजह से भारतीय अर्थव्यवस्था पर कम असर पड़ता। दुनिया भी बीसवीं सदी के मध्य में आपस में इतनी जुड़ी हुई नहीं थी जितनी आज है। 2023 में, भारत की स्थिति गुणात्मक रूप से अलग है। सीएसआईएस के एक अध्ययन के मुताबिक, दक्षिण चीन सागर के माध्यम से भारत का कुल व्यापार 2008 में 123 अरब डॉलर था, जो 2016 तक बढ़कर 208 अरब डॉलर हो गया (सिर्फ आठ साल में 80 फीसदी की बढ़ोतरी) और सामानों के व्यापार में इसका हिस्सा 30 फीसदी से ज़्यादा था।[20] 2016 से निर्यात और आयात में और बढ़ोतरी को देखते हुए, इस बात की संभावना है कि दक्षिण चीन सागर के माध्यम से भारतीय व्यापार के वॉल्यूम और प्रतिशत दोनों में और बढ़ोतरी हुई होगी। चीन-ताइवान संघर्ष दक्षिण चीन सागर के माध्यम से व्यापार करना मुश्किल बना देगा क्योंकि इसके उत्तर में समुद्री आवाजाही गंभीर रूप से बाधित होगी। इन महत्वपूर्ण जलमार्गों के बंद होने के नतीजे में इस तरह व्यापार का रुकना भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों पर गंभीर असर डालेगा।

इस प्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान के अलावा, अप्रत्यक्ष रुकावटें ज़्यादा ख़ौफ़नाक हो सकती हैं। 2022 में रोडियम ग्रुप के एक अध्ययन के मुताबिक, ताइवान दुनिया के सबसे उन्नत लॉजिक चिप्स (10 नैनोमीटर से छोटे नोड साइज़ का) का 92 फीसदी हिस्सा उत्पादित करता है और इससे कम उन्नत लेकिन फिर भी महत्वपूर्ण चिप्स के वैश्विक उत्पादन का 33 से 50 फीसदी हिस्सा।[21] ताइवान सेमीकंडक्टर मैन्युफैक्चरिंग कॉर्पोरेशन (टीएसएमसी) दुनिया के ऑटोमोटिव माइक्रोकंट्रोलर्स का 35 फीसदी, स्मार्टफ़ोन चिपसेट्स, और टेलीकॉम और मेडिकल उपकरणों के महत्वपूर्ण कलपुर्जों का 70 फीसदी भी उत्पादित करता है। चीन का ताइवान की नाकेबंदी करना भारत को सेमीकंडक्टर एक्सपोर्ट पर बुरी तरह बाधित करेगा जिसका बड़ा असर प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों पर पड़ेगा।

अगर पश्चिमी देश चीन के ताइवान की नाकेबंदी को चुनौती देने के लिए आर्थिक प्रतिबंध जैसे कदम उठाते हैं, तब भारत के लिए इसके नतीजे और भी बुरे हो सकते हैं। पहला, इससे भारत और उत्तर पूर्वी एशिया (जापान और दक्षिण कोरिया) के बीच सारी आर्थिक गतिविधियों पर असर पड़ेगा क्योंकि ताइवान जलडमरूमध्य में व्यावसायिक नौवहन के लिए नहीं जाया जा सकेगा। एक अनुमान के अनुसार, दुनिया भर की कंटेनर शिपिंग का लगभग 50 प्रतिशत ताइवान जलडमरूमध्य से होकर गुज़रता है।[22] दूसरा, चीन और बाकी दुनिया के बीच व्यापार पर गंभीर रूप से असर पड़ेगा क्योंकि पश्चिमी प्रतिबंधों की आशंका को देखते हुए बैंक चीन से व्यापार में कटौती कर सकते हैं, और नतीजतन वैश्विक व्यापार वित्त प्रभावित होगा। चीन का वैश्विक व्यापार में 12 फीसदी हिस्सा है, और चीना का करीब-करीब आधा निर्यात वैश्विक सप्लाई चेन के महत्वपूर्ण हिस्सों का प्रतिनिधित्व करता है।[23] तीसरा, सप्लाई चेन में इस व्यवधान का असर भारत के प्रमुख आर्थिक भागीदारों (पूर्वी और पश्चिमी दोनों हिस्सों के) पर पड़ेगा। चौथा, चिप्स की कमी से दुनिया भर के इलेक्ट्रॉनिक, ऑटोमोटिव, और कंप्यूटिंग सेक्टरों में रुकावट आएगी।[24] पांचवां, समुद्र के भीतर की केबल्स के लिए ताइवान एक बड़ा हब है। (वर्चुअल वर्ल्ड को जोड़ने वाले पंद्रह प्रमुख केबल्स में ताइवान नोड है)।[25] अगर केबल सिक्योरिटी प्रभावित होती है, तब दुनिया भर में डिजिटल कामकाज में गंभीर रुकावट आएगी।[26] इसके नतीजे में वैश्विक व्यापार को जो झटके लगेंगे, उनका असर सिर्फ भारत के मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर पर ही नहीं, बल्कि ई-कॉमर्स, आईटी-इनेबल्ड सर्विसेज़, लॉजिस्टिक्स, एंटरटेनमेंट, और दूसरी सर्विसेज़ इंडस्ट्रीज़ पर भी आएगा जो भारत की अर्थव्यवस्था के प्रमुख अंग हैं, और इससे लाखों भारतीय नागरिकों को बेरोज़गारी का सामना करना पड़ सकता है। रोडियम ग्रुप के अध्ययन में अनुमान लगाया गया कि ताइवान की नाकाबंदी से होने वाले सालाना व्यवधान का मतलब होगा 2 लाख करोड़ डॉलर (दुनिया की जीडीपी का लगभग 3 प्रतिशत) का वैश्विक वार्षिक आर्थिक नुकसान।[27] दूसरे अनुमान कहते हैं कि चीन की नॉमिनल जीडीपी का 7.6 प्रतिशत, जापान की नॉमिनल जीडीपी का 3.7 प्रतिशत, और यूरोप की जीडीपी का 2.1 प्रतिशत इससे गायब हो जाएगा।[28] इसलिए, ताइवान जलडमरूमध्य में किसी भी तरह के संघर्ष, चाहे वो नाकाबंदी हो या क्वारंटीन, इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभावों का नतीजा भारत के लिए विनाशकारी हो सकता है।

इसलिए, भू-राजनीतिक और भू-आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोण से, ताइवान जलडमरूमध्य में जो भी होता है, उस पर भारत को नज़र ज़रूर रखनी चाहिए। जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह है नीतियों की स्पष्ट दिशा ताकि जब भी अगला संकट आए, भारत के पास अपने हितों की रक्षा के लिए ज़रूरी जानकारी और विशेषज्ञता हो। इस विशेषज्ञता को विकसित करने के लिए, इस बात का अध्ययन करना फायदेमंद होगा कि 1950 के दशक में जब दो बड़े संकट (1954-55 और 1958) ने इस क्षेत्र को सैन्य संघर्ष के मुहाने पर खड़ा कर दिया था, तब ताइवान समस्या के प्रति भारत का रुख क्या था। इस अध्ययन से निकलने वाले कीमती सबक, सकारात्मक और नकारात्मक दोनों, आज के दौर में भारत के कदमों को आकार देने (और सही ठहराने) में मददगार होंगे।

1954-55 और 1958 के संकट के दौरान भारत की ताइवान नीति

सबसे पहले, संक्षेप में यह समझना महत्वपूर्ण है कि 1949 में रिपब्लिक ऑफ चाइना (ताइवान) से नए बने देश पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना को राजनयिक मान्यता हस्तांतरित करने के भारत के नीतिगत निर्णय के पीछे क्या तर्क था। आज़ादी के बाद, भारत ने राष्ट्रवादी चीन के साथ संबंध स्थापित किए और उसकी राजधानी नानकिंग (अब नानजिंग के नाम से जाना जाता है) में एक राजदूत तैनात किया। नवंबर 1948 तक, भारतीय राजदूत के.एम. पणिक्कर नई दिल्ली को रिपोर्ट कर रहे थे कि मंचूरिया और सुचाऊ की लड़ाई में सैन्य पराजय[29] के बाद चीन के राष्ट्रपति के रूप में चियांग काई-शेक की स्थिति "अस्थिर" हो गई है, जिसके बाद भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने विदेश मंत्रालय को कहा कि वह "चीन में खत्म हो रही सरकार" से ज़्यादा ताल्लुकात ना रखे।[30] 1949 के मध्य तक, जब कम्युनिस्ट ज़्यादातर मुख्य भूमि पर फैल गए और नानकिंग पर कब्ज़ा कर लिया, नेहरू ने निष्कर्ष निकाला कि "अब उनके [चियांग काई-शेक और कुओमिंतांग शासन के] सफल होने की रत्ती भर भी संभावना नहीं है।"[31]

नई कम्युनिस्ट सरकार को मान्यता देने के सवाल की भारत ने गहन जांच की थी। चार विकल्पों पर विचार किया गया था- मान्यता देने से इन्कार, वास्तविक मान्यता, सशर्त कानूनी मान्यता अगर चीन पिछली सत्ता द्वारा की गई सभी संधियों का पालन करने के लिए सहमत हो, और पूर्ण कानूनी मान्यता।[32] 17 नवंबर, 1949 को एक उच्चस्तरीय बैठक में पूर्ण मान्यता देने के निर्णय को दर्ज किया गया, जिसमें भारत सरकार ने निष्कर्ष निकाला कि "यह शासन [चीनी जनवादी गणराज्य] अच्छी तरह से स्थापित और स्थिर है और इसके टिकने की संभावना है। इसलिए इस तथ्य को स्वीकार किया जाना चाहिए ताकि इस नई सरकार के साथ सामान्य कामकाज किया जा सके।"[33]

चीनी जनवादी गणराज्य को मान्यता देने के पहले, भारत ने यूनाइटेड किंगडम और राष्ट्रमंडल देशों समेत कई महत्वपूर्ण साझीदारों के साथ सलाह किया। ब्रिटिश सरकार ने भी शीघ्र मान्यता का समर्थन किया, दो वजहों से क्योंकि "इस उम्मीद का कोई और आधार नहीं दिखाई देता कि कम्युनिस्ट चीन में पूर्ण सत्ता के अपने प्रयास में नाकाम होंगे," और क्योंकि मान्यता रोकने से "चीन में पश्चिमी हितों की सुरक्षा करने में गंभीर व्यावहारिक दिक्कतें आ जाएंगी" (इन "हितों" में राजनीतिक और व्यावसायिक दोनों थे)।[34] यूनाइटेड किंगडम चाहता था कि भारत उस मत का समर्थन करने में सक्षम हो जो ब्रिटिश सरकार अमेरिका के साथ आगामी परिचर्चाओं में प्रस्तावित करने जा रही थी। भारत जानता था कि अमेरिका चीनी जनवादी गणराज्य को मान्यता देने के खिलाफ है। अक्तूबर 1949 में अमेरिका ने भारत को एक एड-मेम्वॉर (यादनामा) सौंपा, जिसमें भारत से "जल्दबाज़ी" ना करने की गुज़ारिश की गई और साथ ही आगाह किया गया कि "केंद्रीय कम्युनिस्ट शासन की घोषणा में इस बात का कोई आश्वासन नहीं है कि शासन उन अंतरराष्ट्रीय दायित्वों को मानने के लिए तैयार है जो चीन में सरकार को हस्तांतरित होते हैं।"[35] अक्तूबर में नेहरू की वॉशिंगटन यात्रा के दौरान आगे की बातचीत हुई थी।[36] नई दिल्ली को विभिन्न हलकों से सलाह दी जा रही थी कि अमेरिका अंत में मान जाएगा। वॉशिंगटन में भारतीय दूतावास ने सूचित किया कि "अमेरिकी विदेश मंत्रालय नई चीनी सत्ता को मान्यता देने के लिए अनिच्छुक नहीं था"(मूल टेलीग्राम में नहीं पर ज़ोर दिया गया था)।[37] ब्रिटेन के तत्कालीन विदेश सचिव अर्नेस्ट बेविन ने कथित तौर पर नवंबर 1949 के मध्य में भारतीय उच्चायुक्त को बताया कि यह उनकी निजी धारणा है कि अमेरिकी राय में ब्रिटिश मत के लिए कम प्रतिकूल होने के संकेत दिख रहे हैं। इस संदेश को नेहरू ने देखा और उस पर संक्षिप्त हस्ताक्षर किए थे।[38] नेहरू ने निष्कर्ष निकाला कि "संयुक्त राज्य अमेरिका, विशेष कारणों से, इस समय मान्यता नहीं दे सकता है, लेकिन हमें यकीन है कि वे मान्यता देंगे।"[39]

चूंकि चीनी जनवादी गणराज्य ने ज़ोर दिया था कि "अगर भारत नेकनीयत है, तो उन्हें पहले जियांग जिएशी [चियांग काई-शेक] के साथ सारे संबंध पूरी तरह तोड़ लेने चाहिए, बिना किसी शर्त के इस सत्ता को किसी भी तरह का समर्थन और सहयोग नहीं देना चाहिए और इसकी आधिकारिक घोषणा करनी चाहिए,"[40] भारत ने रिपब्लिक ऑफ चाइना (या कुओमिंतांग शासन) की मान्यता रद्द कर दी और 30 दिसंबर, 1949 को नए शासन

को अपनी मान्यता हस्तांतरित कर दी।[41] भारत का यह फैसला तथ्यों के मूल्यांकन और साथ ही द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया के व्यापक भू-राजनीतिक परिदृश्य पर आधारित था। नीतिगत निर्णय लिए जाने के बाद, भारत ने चियांग काई-शेक की पुछल्ली सरकार के साथ सारे संपर्क तोड़ लिए और कम्युनिस्ट शासन के साथ रिश्ते बनाने पर ध्यान केंद्रित कर लिया।

ऊपर बताई गई कहानी से तीन महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला, चीनी जनवादी गणराज्य को मान्यता देने के भारत के फैसले के पीछे उस वक्त की ज़मीनी हक़ीकत के सोचे-समझे मूल्यांकन पर आधारित स्पष्ट तर्क था और साथ ही इस बदलाव में निहित लागत-लाभ विश्लेषण था (इसमें संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में जम्मू और कश्मीर विवाद के संभावित नतीजे शामिल थे, यह देखते हुए कि स्थायी सदस्य की चीन की सीट ताइवान के पास थी)।[42] दूसरा, भारत ने यह निष्कर्ष भी निकाला था कि चीनी जनवादी गणराज्य सत्ता में टिके रह सकता है और, इसलिए, लंबी अवधि में यह फायदेमंद होगा अगर भारत एक पड़ोसी देश में नई सरकार को मान्यता देने की पहल करता है।[43] तीसरा, रिपब्लिक ऑफ चाइना (ताइवान) से मान्यता का हस्तांतरण पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना करके भारत इस मुद्दे को एशियाई भू-राजनीतिक परिस्थिति के व्यापक संदर्भ में भी देख रहा था। भारत ने शीत युद्ध में दो खेमों के उभरने से बंधा हुआ महसूस किया था और एशिया में एक नए भू-राजनीतिक संतुलन बनाने के लिए बड़े एशियाई देशों के एकजुट रहने के पक्ष में था जिससे भारत के राष्ट्रीय हितों की रक्षा हो सके। इस कोशिश के लिए चीन को ज़रूरी समझा गया था। भारत ने निष्कर्ष निकाला था कि ताइवान के साथ संबंध बनाए रखकर या चीनी जनवादी गणराज्य की मान्यता रोककर कुछ हासिल नहीं होगा।

भारतीयों के बीच यह एक प्रचलित गलत धारणा है कि चीनी जनवादी गणराज्य को मान्यता देने के बाद भारत ने ताइवान के मसले पर आगे कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। अभिलेखीय स्रोत एक अलग तस्वीर पेश करते हैं। नेहरू के मुताबिक, दुनिया के सामने दो विकल्प थे- सह-अस्तित्व या सह-विनाश। और उन्होंने महसूस किया कि अगर सह-अस्तित्व को बनाए रखना है तो भारत को निष्पक्ष रहना होगा और एक शांतिपूर्ण क्षेत्र बनाना होगा। व्यावहारिक अर्थों में, इसका मतलब था कि भारत शीत युद्ध के किसी भी खेमे में शामिल नहीं होगा। इसलिए, भारत की विदेश नीति की कल्पना इस तरह की गई कि "उस दौर की दो मौजूद प्रवृत्तियों में किसी के भी साथ पूरी तरह नहीं जुड़ने वाली सोच रखी जाए।"[44] विदेश नीति के इस ढांचे के दायरे में, भारत ने उत्सुकता के साथ कोरिया और वियतनाम के युद्ध देखे और इस बात से चिंतित हुआ कि दुनिया "बड़े संकट की तरफ कभी आराम से, तो कभी तेज़ रफ्तार से आगे बढ़ रही है।"[45] नेहरू का विचार था कि भारत "महाशक्ति बनने की संभावना वाला एक स्वतंत्र राष्ट्र है...[जो] स्वतंत्रता के साथ आई जिम्मेदारियों से इन्कार नहीं कर सकता,"[46] और यह भारत का दायित्व है कि वह एशियाई भू-राजनीतिक परिस्थिति को स्थिर करने की कोशिश करे और क्षेत्रीय संकटों को एक बड़े युद्ध की व्यापक अस्थिरता में बदलने से रोके जो भारत के लिए नुकसानदेह होगा।[47] नेहरू ने घोषित किया कि जहां एशियाई समस्याओं में पश्चिम की गहन दिलचस्पी है, "अपनी नियति और एशिया की नियति में हमारा अधिकार होना ही चाहिए।"[48] भारत ने चीनी जनवादी गणराज्य को एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी के तौर पर देखा जो एशिया में एक नया संतुलन बनाने में भारत की मदद कर सकता था, ऐसा संतुलन जिसका फैसला "एशियाई देशों से सलाह किए बगैर...पश्चिमी ताक़तें" नहीं कर सकती थीं।[49]

सुदूर पूर्वी एशिया में अमेरिका और चीनी जनवादी गणराज्य के बीच टकराव ने भारतीय विदेश नीति के इस लक्ष्य को जटिल बना दिया, जैसा कि कोरियाई युद्ध के दौरान हुआ था। उस युद्ध के अनुभव ने मध्यस्थता की ज़रूरत वाले भावी मुद्दों के लिए एक सबक का काम किया था। रुद्र चौधरी लिखते हैं कि उस वक्त, नेहरू ने,

> " 'खुलकर घोषणा की थी कि भारत मध्यस्थता के लिए पेशकश कर सकता है, लेकिन 'तभी जब उससे ऐसा करने का आग्रह किया जाए।' इस तरह, भारत कम्युनिस्ट चीन और अमेरिका के बीच एक दूत के रूप में भी काम करता। संयम बनाए रखने और एक वार्ताकार के रूप में अपनी भूमिका निभाने के लिए, यह अनिवार्य था कि अमेरिका की 'बात में ना' आया जाए। इसके अलावा, यह ज़रूरी था कि भारत उस चीज़ में 'धकेला' ना जाए, जो सुदूर पूर्व में अमेरिका के नेतृत्व वाले युद्ध में आसानी से बदल सकता था। मकसद था कि घटनाओं का आकलन 'जितना संभव हो उतने निष्पक्ष ढंग से'किया जाए, और 'जोश में बह ना जाया जाए।' यह मुश्किल होता। जैसा कि नेहरू ने अच्छी तरह समझा था, यह 'तलवार की धार पर खुद को संतुलित करने की कोशिश करने वाला एक डरावना कठिन मामला था।' "[50]

इसी के अनुसार, भारत ने कोरियाई युद्ध में सेना के इस्तेमाल का विरोध किया और सभी देशों के साथ दोस्ताना रिश्ते बनाए रखने की कोशिश की, ताकि यह एक माध्यम के रूप में भी काम कर सके और साथ ही रणनीतिक स्वायत्तता बनाए रख सके।[51] भारत को यह भी मालूम था कि "अमेरिका के साथ जाने का मतलब चीनी जनवादी गणराज्य का विरोध होगा, जो भारत का नज़दीकी पड़ोसी है।"[52] कोरियाई युद्ध के अनुभव से एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह था कि गुटनिरपेक्षता का उद्देश्य भारत के क्षेत्रीय हितों की सुरक्षा करना था, जिसका मतलब था चीनी जनवादी गणराज्य के साथ सामंजस्य और संयुक्त राष्ट्र में उसके प्रवेश को प्रोत्साहित करना।[53] ताइवान जलडमरूमध्य के पहले संकट के दौरान इन सबकों को दोहराया जाने वाला था।

नेहरू ने ताइवान मुद्दे की पहचान "खतरे के बिंदु" के रूप में की क्योंकि कोई भी पक्ष झुकने के लिए तैयार नहीं था।[54] नेहरू ने निष्कर्ष निकाला कि यह गतिरोध "सुदूर पूर्व में हालात...आगे जाते हुए बदतर" बना देगा।[55] इसने ताइवान के प्रश्न को भारत की सबसे महत्वपूर्ण विदेश नीति चिंताओं में से एक बना दिया।

संप्रभुता के सवाल पर, भारत स्पष्ट था कि "कानूनी आधार और ऐतिहासिक आधार दोनों पर [ताइवान पर चीन का दावा] चीनी सरकार के पक्ष में है।"[56] नेहरू ने यह भी महसूस किया कि फॉर्मोसा (ताइवान का तत्कालीन नाम) के चीन में विलय के रास्ते में अमेरिकी जानबूझकर बाधाएं खड़ी कर रहे हैं। अमेरिकी च्यांग काई-शेक की सहायता "सिर्फ फॉर्मोसा पर कब्ज़ा बनाए रखने में नहीं, बल्कि चीनी मुख्य भूमि के बेहद नज़दीक कई टापुओं पर भी कब्ज़ा करने में" कर रहे थे।[57] भारत ने संयम बरतने की सलाह दी। नेहरू ने लिखा, "हमने अमेरिका को सुझाव दिया है कि फॉर्मोसा के बारे में एक स्पष्ट घोषणा हालात को आसान बनाएगी। हमने चीनी सरकार को सुझाव दिया है कि कोई भी अविवेकपूर्ण या उकसाने वाला कदम खतरनाक होगा और इसलिए उससे बचा जाना चाहिए... लेकिन हमारा प्रभाव सीमित है और शांतिदूत की भूमिका हमेशा मुश्किल होती है।"[58]

ताइवान जलडमरूमध्य का पहला संकट

ताइवान जलडमरूमध्य का पहला संकट (1954-55) चीन की मुख्य भूमि के दस समुद्री मील के भीतर स्थित टापुओं (खास तौर पर जिनमेन/क्यूमॉय और मज़ु/मत्सु टापू, यहां जिनका संदर्भ यहां अपतटीय द्वीप के रूप में दिया गया है) के इर्द-गिर्द केंद्रित था जिन पर ताइवान का नियंत्रण था। इन टापुओं पर च्यांग की फौजी बंदोबस्ती और चीनी जनवादी गणराज्य द्वारा उन पर बमबारी ने अगस्त 1954 से चीन और अमेरिका के बीच ऊंचे तनाव की चिंगारी भड़का दी। हालांकि भारत ना तो इसमें सीधे तौर पर शामिल था और ना ही इससे भारत पर सीधा असर हो रहा था, लेकिन भारत इस बात से चिंतित था कि "भय का एक दुष्चक्र" बनाया जा रहा है क्योंकि अमेरिकी चीन के खिलाफ एक कम्युनिस्ट विरोधी सैन्य ब्लॉक (साउथ ईस्ट एशियन ट्रीटी ऑर्गेनाइज़ेशन, या सीटो) बना रहे थे, और चीन एक एशियाई ग्रुप[59] बना रहा था ताकि "साउथ ईस्ट एशियाई आक्रमणकारी ब्लॉक को संगठित करने की अमेरिकी साजिश पर प्रहार किया जा सके।"[60] इस संकट पर नेहरू ने सार्वजनिक रूप से शुरुआत में ही प्रतिक्रिया दी थी, और अगस्त 1954 में संसद को बताया था कि "जब कोई समस्या या निर्णय किसी युद्ध या शांति की तरफ ले जा सकता है, एक युद्ध जो पूरी दुनिया में फैल सकता है, तब यह एक स्थानीय या महाद्वीपीय समस्या भी नहीं रह जाता- यह एक वैश्विक समस्या हो जाता है।"[61] उन्होंने इसे "शांति के पक्ष में अपनी हैसियत का इस्तेमाल करने के लिए" भारत के दायित्व के तौर पर देखा, जब दुनिया "एक तरह की खड़ी पहाड़ी के मुहाने पर बैठी है।"[62]

अक्तूबर 1954 में बीजिंग में नेहरू की माओ के साथ बातचीत हुई जिसमें माओ ने उन्हें बताया कि अमेरिका और च्यांग काई-शेक की सेनाएं चीन को नुकसान पहुंचाने के लिए अपतटीय द्वीपों का इस्तेमाल कर रहे हैं,[63] और माओ ने ताइवान को "चीनी मुख्य भूमि के लिए एक स्थायी खतरा बताया"[64], इससे नेहरू ने निष्कर्ष निकाला कि चीनी जनवादी गणराज्य की आसन्न चिंताएं अपतटीय द्वीपों के इर्द-गिर्द केंद्रित हैं।[65] माओ की यह उम्मीद भी थी कि भारत अमेरिका को बता सकता है कि चीन ताइवान के मुद्दे पर उसके साथ लड़ने का इच्छुक नहीं है।[66] चाऊ एनलाई के साथ बाद की एक बातचीत में हालांकि नेहरू ने कहा कि वो ताइवान के मुद्दे पर "मध्यस्थता" नहीं करना चाहते हैं,[67] यहीं से भारत ने ताइवान जलडमरूमध्य के पहले संकट में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया।

दूसरे क्षेत्रों से प्रोत्साहन मिला, खासकर ब्रिटिश सरकार से। भारत ने गौर किया था कि चीनी जनवादी गणराज्य के मुद्दे पर 1949 में भी अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम (पश्चिमी जगत में भारत के मुख्य साझीदार) के बीच "अलग- और कुछ हद तक परेशान करने वाली- मतभिन्नता" थी।[68] जब संकट पैदा हुआ, ब्रिटिश चिंतित हो गए कि चीन-अमेरिका टकराव इस क्षेत्र में ब्रिटेन के अच्छे-खासे हितों को जटिल बना सकता है, खास तौर पर यह जानने के बाद कि अमेरिका का इरादा ताइवान के साथ एक म्युचुअल डिफेंस ट्रीटी पर दस्तखत करने का है और जिससे बीजिंग नाराज़ होगा। बीजिंग में बातचीत के बाद नेहरू का यह निष्कर्ष कि चीन की प्राथमिकता ताइवान से पहले अपतटीय द्वीपों पर दोबारा कब्ज़ा करने की है, ब्रिटिश सरकार के निष्कर्ष से मेल खाता था। वॉशिंगटन में ब्रिटिश राजदूत, जिन्होंने नेहरू के इनपुट तत्कालीन अमेरिकी विदेश सचिव जॉन फॉस्टर डलेस के साथ साझा किए थे, ने भी उन्हें बताया कि "हमारी अपनी जानकारी है कि तटीय द्वीपों के इलाके में हालात अभी शायद उतने खतरनाक नहीं हैं जैसी वे बताते हैं... यह खतरनाक होगा अगर राष्ट्रवादी दबाव की वजह से अमेरिकी उस समझौते के साथ आगे बढ़ते हैं जो, ना तो अपने प्रावधान में और ना ही अपने उद्देश्य के साथ के बयान में, यह स्पष्ट करता है कि फॉर्मोसा का इस्तेमाल एक 'विशेषाधिकार प्राप्त क्षेत्र' के रूप में नहीं किया जाएगा।"[69] भारत और ब्रिटेन दोनों की इस बिंदु पर एक राय थी कि किसी बड़े संघर्ष से बचा जा सकता है अगर अपतटीय द्वीपों की समस्या का कोई समाधान निकाला जा सके।

अमेरिकियों ने 1949 के बाद चीन को अलग चश्मे से देखा, और भारत और अमेरिका के बीच की खाई कोरियाई और भारत-चीन संघर्षों के दौरान, और एशिया में आम तौर पर चीन के व्यवहार को लेकर लगातार बढ़ती गई।[70] चीन को संदेह का लाभ देने की भारत की प्रवृत्ति ने वॉशिंगटन में नाराज़गी पैदा कर दी।[71] सितंबर 1954 में दक्षिण पूर्व एशिया में अमेरिका के नेतृत्व वाली सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था में शामिल होने से भारत के इनकार ने साम्यवादी चीन के साथ भारत की "दोस्ती" के बारे में वॉशिंगटन की चिंताओं को गहरा करने का ही काम किया। नेहरू की चीन यात्रा पर अमेरिका की करीबी नज़र थी। चीन के बारे में नेहरू की बाद की सकारात्मक बातों ने, जिनमें अपतटीय द्वीपों पर चीन के दावे के बारे में एक विशिष्ट उल्लेख शामिल है,[72] ने तत्कालीन राष्ट्रपति ड्वाइट आइजनहावर के तहत अमेरिकी प्रशासन की नज़र में भारत की छवि को और बिगाड़ दिया। इसलिए, जब अंग्रेज़ों ने अमेरिकियों से ताइवान के बारे में नेहरू से बात करने का आग्रह किया[73], तो अमेरिकियों ने आपत्ति जताई।[74] लगभग शुरू से ही, अमेरिका भारत को एक संभावित मध्यस्थ के रूप में देखने, या यहां तक कि भारत के साथ परामर्श करने के लिए भी तैयार नहीं था।[75]

अमेरिका के 2 दिसंबर, 1954 को ताइवान के साथ आपसी रक्षा संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद 1955 की शुरुआत में ताइवान जलडमरूमध्य का पहला संकट और गहरा गया, और अमेरिकी कांग्रेस ने 1955 का फॉर्मोसा संकल्प पारित किया, जिसने अमेरिकी राष्ट्रपति को कम्युनिस्ट हमले के खिलाफ ताइवान को सुरक्षित करने और उसकी रक्षा करने के विशिष्ट उद्देश्य से सशस्त्र बलों को तैनात करने की अनुमति दी। नेहरू ने इसे "सुदूर पूर्व में कुछ हद तक विस्फोटक स्थिति"[76] कहा। एंग्लो-अमेरिकन मतभेद भी गहरा गए क्योंकि ब्रिटिश चिंतित थे कि डलेस का इस संकट को "ताइवान के लिए एक लड़ाई"[77] की संज्ञा देना "एशियाई देशों को डरकर चीन के पाले में"[78] भेज सकता है और एशिया में ब्रिटेन के हितों के अलावा राष्ट्रमंडल देशों के साथ इसके संबंध को जटिल बना सकता है। यूनाइटेड किंगडम ने अमेरिका से कहा कि अगर वो तटीय द्वीपों पर लड़ाई में शामिल होता है, तो इसका एंग्लो-अमेरिकी संबंधों पर गंभीर प्रभाव हो सकता है। इसके जवाब में, अमेरिकियों ने यह साफ़ किया कि चीनी जनवादी गणराज्य को रियायतें देना खतरनाक होगा, और डलेस ने इसकी तुलना 1938 के म्युनिख समझौते के साथ की।[79]

ब्रिटिश चीन और अमेरिका के बीच गतिरोध की इस परिस्थिति में अपना प्रभाव इस्तेमाल करने के लिए भारत पर दबाव डाल रहे थे और बीजिंग पर ताइवान जलडमरूमध्य में आपसी युद्ध-विराम के लिए सहमत होने का दबाव बना रहे थे, जिसके बदले में अमेरिकी च्यांग काई-शेक को अपतटीय द्वीपों को खाली करने के लिए मनाएंगे। नेहरू को यह आइडिया पसंद आया क्योंकि यह उनके इस विश्लेषण से मेल खाता था कि चीन की फौरी चिंता या रुचि अपतटीय द्वीपों में थी। दिसंबर 1954 में, वॉशिंगटन में ब्रिटिश राजदूत सर रोजर माकिंस ने भारतीय राजदूत जीएल मेहता को बताया कि "शायद अमेरिका को इस बात से कोई दिक्कत नहीं होगी अगर चीनी समुद्र तट के नज़दीक के कुछ अपतटीय द्वीपों पर पेकिंग सरकार का कब्ज़ा हो जाए बशर्ते वे फॉर्मोसा को धमकाएं नहीं।"[80] एक महीने बाद, लंदन में कॉमनवेल्थ प्राइम मिनिस्टर्स कॉन्फ्रेंस (31 जनवरी से 9 फरवरी, 1955) में, नेहरू को अपने ब्रिटिश समकक्ष का यही मत महसूस हुआ कि अमेरिकी ऐसे किसी आपसी व्यवस्था के लिए मान सकते हैं।[81] ऐसा ही संदेश कनाडा के विदेश मंत्री लेस्टर पीयरसन ने डलेस के साथ बातचीत में दिया था।[82] शायद नेहरू ने मान लिया था कि दोनों पक्षों पर अपना प्रभाव दिखाने के लिए

भारत का समर्थन इस आइडिया पर आधारित था कि अगर अपतटीय द्वीपों को ताइवान से खाली करा लिया जाता है "बिना संघर्ष के, तो अप्रिय घटनाओं की संभावना बहुत कम हो जाएगी।"[83] नतीजतन, 1955 के वसंत में, भारत ने ताइवान जलडमरूमध्य में आपसी युद्ध-विराम के बदले में अपतटीय द्वीपों से ताइवान के हटने के मुद्दे पर अमेरिका और चीन के साथ बातचीत की ताज़ा कोशिशें शुरू कीं।

मार्च में, तत्कालीन सांसद और संयुक्त राष्ट्र में भारत के मुख्य प्रतिनिधि वीके कृष्णा मेनन ने अमेरिकियों को सुझाव दिया कि "बातचीत में किसी प्रगति के लिए, अमेरिकियों और चीनी कम्युनिस्टों के बीच प्रत्यक्ष लेकिन अनौपचारिक संपर्क स्थापित करना होगा," साथ ही जोड़ा कि इस संबंध में एक तीसरा पक्ष "फायदेमंद हो सकता है।"[84] अमेरिका की तरफ से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। अमेरिका को फरवरी 1955 में भारतीय संसद में नेहरू और कृष्णा मेनन के सार्वजनिक बयानों की जानकारी थी, जिसमें ताइवान पर चीन के दावों को स्पष्ट रूप से दोहराया गया था, और अप्रत्यक्ष रूप से ताइवान को अमेरिकी सैन्य मदद की आलोचना की गई थी।[85] 15 मार्च 1955 को मेनन की आइजनहावर के साथ मुलाकात में, उन्हें और भारतीय राजदूत जीएल मेहता दोनों को अहसास हुआ कि "राष्ट्रपति और डलेस ने विवाद के किसी भी मुद्दे को ना उठाने और ना ही सुदूर पूर्व में हालात का उल्लेख करने का फैसला किया था।"[86] लेकिन मेनन यह मानने को तैयार नहीं थे कि अमेरिकियों की भारतीय हस्तक्षेप में दिलचस्पी नहीं थी। इसलिए, जब मेनन ने मार्च में डलेस को एक मुलाकात में बताया कि चीनी जनवादी गणराज्य की कोई "विस्तारवादी महत्वाकांक्षा" नहीं है, उन्होंने डलेस के इस विचार की पुष्टि की हो सकती है कि भारत पक्षपाती है। चीन के साथ भारत की दोस्ती के अलावा स्टालिन की मौत के बाद सोवियत संघ के साथ इसके मज़बूत होते रिश्ते और चीन के मसले पर अमेरिकी पक्ष को समर्थन देने में भारत की अनिच्छा ने अमेरिका और भारत के बीच बढ़ते अविश्वास को पैदा कर दिया था। और तथ्य यह था कि 1950 के दशक में ऐसे कुछ ही वार्ताकार थे जो इन परिस्थितियों में इस रिश्ते के पक्ष में खड़े दिखते थे। अमेरिकी जानते थे कि मेनन अप्रैल में बांडुंग में एफ्रो-एशियाई कॉन्फ्रेंस में जा रहे हैं (जहां चाऊ एनलाई भी मौजूद रहने वाले थे) लेकिन इस मसले पर उन्होंने मेनन के साथ बातचीत नहीं की।[87] अप्रैल 1955 की शुरुआत में, बांडुंग कॉन्फ्रेंस के पहले, डलेस ने अपने ब्रिटिश समकक्ष को सूचित किया कि अमेरिका चीनी मध्यस्थों की राय जानने के लिए दूसरे देशों का उपयोग करेगा, लेकिन भारत का नहीं।[88] बाद में अमेरिका ने इस मकसद के लिए तुर्की, मिस्र, ईरान, पाकिस्तान, थाइलैंड, और जापान से संपर्क किया।[89]

1950 के दशक के भारत के अनुभव से एक उल्लेखनीय सबक यह है कि जिस समय ब्रिटेन भारत को चीन के साथ अपतटीय द्वीपों के लिए युद्ध विराम के विचार पर काम करने के लिए प्रोत्साहित कर रहा था, चीन अलग से अंग्रेज़ों को बता रहा था कि यह विचार "अनुचित सौदा" है।[90] लेकिन, यह जानकारी, और यह तथ्य कि तत्कालीन ब्रिटिश विदेश सचिव एंथनी ईडन फरवरी 1955 में चाऊ एनलाई के साथ पत्राचार कर रहे थे, भारत के साथ बाद में साझा किया गया था। इसलिए, यह अनुमान लगाना उचित है कि नेहरू एक ऐसे प्रस्ताव के पीछे लगे रहे (और इसके लिए उन्हें दूसरे लोग प्रोत्साहित कर रहे थे) जिसे चीन पहले ही अस्वीकार कर चुका था।

अप्रैल 1955 में, बांडुंग में, चीनी पक्ष ने "सुदूर पूर्व और विशेष रूप से ताइवान क्षेत्र में तनाव कम करने के संबंध में अमेरिका के साथ बैठकर बात करने की अपनी इच्छा व्यक्त की।"[91] नेहरू ने फिर सोचा कि यह भारत के लिए संबंधित पक्षों के साथ निजी बातचीत के माध्यम से एक अनौपचारिक भूमिका निभाने का एक मौका है।[92] इसलिए, उन्होंने मई 1955 में कृष्णा मेनन के चीन जाने के लिए चाऊ के विचार पर सहमति व्यक्त की और इस यात्रा के लिए अमेरिकी समर्थन मांगा।[93] लेकिन अमेरिकी विदेश मंत्रालय से आई प्रतिक्रिया उत्साहजनक नहीं थी। "हमें उनमें से किसी [भारत और अन्य देशों] को यह मानने देने से बचना चाहिए कि जब वे पीपिंग की यात्रा करेंगे तो उन्हें हमारे लिए बोलने का अधिकार है।"[94] यह संदेश मई के अंत में दोहराया गया था। "हम...मेनन की यात्रा के बारे में पूरी रिपोर्ट में रुचि रखते हैं, लेकिन वर्तमान में किसी विशिष्ट मध्यस्थ को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं।"[95]

अमेरिकी अनिच्छा के बावजूद, नेहरू ने इस मसले पर दबाव बनाना जारी रखा, आइजनहावर को बताया कि कृष्णा मेनन की "हालिया बातचीत ने मुझे यह मानने के लिए प्रेरित किया है कि तनाव को कम करने और बातचीत का रास्ता तैयार करने के कदम उठाए जा सकते हैं और ऐसा करने की इच्छा मौजूद है।"[96] उनके आग्रह पर, आइजनहावर और डलेस जून 1955 के मध्य में मेनन से मिले, लेकिन वॉशिंगटन में मेनन की बातचीत एक बार फिर अमेरिकी दृष्टिकोण से मददगार नहीं रही। कथित तौर पर उन्होंने डलेस को बताया कि अगर चीन चाहे तो वो अपतटीय द्वीपों पर ताक़त से

कब्ज़ा कर सकता है।[97] मेनन को उम्मीद थी कि वो अमेरिकियों को इस बात के लिए मना लेंगे कि वे इस बात का फैसला किए बगैर द्वीप छोड़ दें कि उन पर किसका हक है। जब मेनन ने डलेस को बताया कि "ब्रिटिश समेत सभी इस बात पर सहमत हैं कि ये द्वीप चीन का हिस्सा हैं, डलेस ने हॉन्गकॉन्ग का जिक्र किया और पूछा कि क्या ब्रिटिश हॉन्गकॉन्ग को छोड़ने के लिए भी सहमत होंगे।"[98] 1 जुलाई और 6 जुलाई 1955 को मेनन की डलेस के साथ दो मुलाकातों के रिकॉर्ड दिखाते हैं कि दोनों में से किसी में आपसी सहमति नहीं हो सकी थी। हालांकि मेनन ने बार-बार दोहराया कि भारत किसी भी पक्ष (अमेरिका या चीन) के बारे में राय नहीं बना रहा है और "सुदूर पूर्व में शांतिपूर्ण स्थितियों की बहाली और संतुलन के ना बिगड़ने देने के अलावा भारत का कोई स्वार्थ नहीं है,"[99] इस समय तक अमेरिकियों के मन में भारत की तटस्थता और ईमानदारी को लेकर पूर्वाग्रह आ गए थे। उन्होंने द्विपक्षीय बातचीत के लिए चाऊ के प्रस्ताव का जवाब देने के लिए ब्रिटिश चैनल का इस्तेमाल किया।[100] इस तरह, आखिरकार ब्रिटिश मदद से चीन और अमेरिका के बीच वार्सा में राजदूत स्तर की बातचीत शुरू हुई, जिसके बाद ताइवान जलडमरूमध्य में तनाव में धीरे-धीरे कमी आई और संघर्ष की संभावना काफी कम हो गई। ताइवान जलडमरूमध्य के पहले संकट के इस अंतिम काम में भारत के पास कोई भूमिका नहीं थी। कृष्णा मेनन ने (पूर्व एशिया के मामलों को देखने वाले अमेरिका के सहायक विदेश मंत्री जॉर्ज एलेन को संबोधित करते हुए) तीखी टिप्पणी करते हुए कहा कि "आपके मंत्री [डलेस] ने मुझे इन शब्दों में कहा: 'चले जाइए, आप किसी काम के उद्देश्य को पूरा नहीं कर रहे हैं।'"[101]अंत में, अमेरिकियों ने अपने साझीदार (भारत) के मुकाबले अपने सहयोगी (ब्रिटेन) का साथ लेना ज़्यादा पसंद किया और भारत को उन्होंने पक्षपाती की तरह देखा। अंग्रेज़ों ने अपना उद्देश्य सिद्ध करने के लिए भारत की मदद तब तक ली जब तक वे अपने माध्यम (चाऊ और इडेन) स्थापित करने में सफल नहीं हो गए ताकि चीन के साथ भारत के हस्तक्षेप की ज़रूरत ना रहे। बीजिंग, जिसने सोचा था कि भारत उसकी मदद अमेरिका के साथ संपर्क बनाने में कर सकता है (चाऊ ने मई 1955 में कृष्णा मेनन के बीजिंग दौरे के बाद ट्रेवेलियन से यह बात कही थी),[102] को भी अंत में यह महसूस हुआ कि अमेरिकियों से निपटने में ब्रिटिश चैनल ज़्यादा असरदार था।

तनावों को हल करने में भारतीय प्रयासों के निराशाजनक अंत के बावजूद, जो बात साफ़ तौर पर दिखती है, वो यह है कि भारत कूटनीतिक प्रयासों में सक्रिय रूप से शामिल था क्योंकि इससे उसके भू-राजनीतिक हित पूरे हो रहे थे। अगस्त 1955 में ताइवान जलडमरूमध्य के प्रथम संकट का खात्मा समग्र रूप से भारत के दृष्टिकोण से एक अच्छी घटना थी। नेहरू इस बात से इन्कार करते कि भारत आधिकारिक रूप से मध्यस्थता कर रहा था,[103] लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि "पेकिंग, लंदन, ओटावा और वॉशिंगटन में हमारी अनौपचारिक वार्ता में भारत के प्रयास इसी दिशा में किए गए हैं।"[104]

ताइवान जलडमरूमध्य का दूसरा संकट

अगस्त 1958 में, एक दूसरा, ज़्यादा बड़ा संकट सामने आया, जिसके दो महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा में बदलने का खतरा था। चीन ने अपतटीय द्वीपों पर दोबारा बमबारी शुरू कर दी, और संयुक्त राज्य अमेरिका ने सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि अगर हमला किया गया, तो वह उनका बचाव करेगा। ताइवान के काफिले की रक्षा के लिए अमेरिकी नौसेना के जवानों की तैनाती और सितंबर 1958 के पहले सप्ताह में चीन की इस घोषणा कि अपतटीय द्वीप चीन के जलक्षेत्र (12 समुद्री मील की सीमा) के भीतर हैं, ने संकट को इस हद तक बढ़ा दिया कि, 8 सितंबर को सोवियत संघ के तत्कालीन महासचिव निकिता ख्रुश्चेव ने आइजनहावर को लिखा कि चीन पर किसी हमले को सोवियत संघ पर हमला माना जाएगा।

भारत ने निष्कर्ष निकाला कि इन घटनाक्रमों का क्षेत्रीय शांति और स्थिरता पर बड़ा असर होगा, और नेहरू ने फिर से "दृढ़ता से [महसूस किया] कि हम सभी को इस तरह के प्रभाव का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि हमें इस तबाही को होने से रोकना है।"[105] भारत ने एक बार फिर अपतटीय द्वीपों पर ताइवान के कब्ज़े का एक समाधान ढूंढ़ने पर विचार किया, जिसे चीनी मुख्य भूमि के लिए एक "निरंतर खतरे" के रूप में देखा जा रहा था।[106] 30 सितंबर, 1958 को बीजिंग में भारतीय राजदूत जी. पार्थसारथी ने इस विचार (चीनी युद्ध विराम के बदले ताइवानियों का अपतटीय द्वीपों से हटना) को चाऊ एनलाई के सामने रखा, जिन्होंने यह कहते हुए इसे सिरे से खारिज़ कर दिया, "कृपया श्री [कृष्णा] मेनन को बताएं कि हम उनकी उदारता के लिए बहुत आभारी हैं, लेकिन हमें कोई जल्दी नहीं है," और स्पष्ट रूप से कहा कि "अगर अमेरिका युद्ध विराम प्रस्ताव को रद्द नहीं करता है, तो हम केवल लड़ाई जारी रख सकते हैं; समझौते की कोई गुंजाइश नहीं है।"[107] चाऊ ने बीजिंग में सोवियत राजदूत एस.एफ. एंटोनोव को बताया, कि भारत

(मेनन) अमेरिकियों के इशारे पर ऐसा कर रहा था ताकि वह संयुक्त राष्ट्र को दो-चीन की स्थिति को स्वीकार करने के लिए मना सके।[108] इस प्रकार, जहां ताइवान जलडमरूमध्य के पहले संकट के दौरान, चीन ने आम तौर पर भारतीय प्रयासों को मददगार माना था, दूसरे संकट के समय तक, चीन महसूस नहीं करता था कि भारत निष्पक्ष या तटस्थ है।[109]

एक वार्ताकार के रूप में भारत की अविश्वसनीयता को लेकर अमेरिकी चिंताएं भी और बढ़ गई थीं। दूसरे संकट की शुरुआत होने तक, अमेरिकियों ने किसी निजी माध्यम के इस्तेमाल के विचार पर चर्चा करके उसे खारिज़ कर दिया था।[110] इसलिए, जब 1 अक्तूबर 1958 को न्यूयॉर्क में भारत के स्थायी प्रतिनिधि आर्थर लाल ने अमेरिकियों को बताया कि भारत दोनों पक्षों की एक-दूसरे की राय के बारे में औपचारिक व्याख्या के जरिए मदद कर सकता है और साथ ही कथित रूप से यह भी बताया कि चीन सेना का इस्तेमाल छोड़ने को तैयार है बशर्ते ताइवानी लोग अपतटीय टापुओं को खाली कर दें,[111] हालांकि अमेरिकियों को पहले से पता था कि चीनी पक्ष इस संभावना को रोकने के लिए काम कर रहा था। जॉन फोस्टर डलेस ने मेनन और लाल की गतिविधियों के बारे में चिंताएं जताईं।[112] 2 अक्टूबर, 1958 को नेशनल सिक्योरिटी काउंसिल की एक बैठक में उन्होंने चाऊ एनलाई और एक अज्ञात व्यक्ति (माना जाता है कि वह अज्ञात व्यक्ति भारतीय राजदूत पार्थसारथी थे) के बीच बातचीत को "साजिशी" बताया।[113] सीआईए के डायरेक्टर एलेन डलेस का भी यकीन था कि चीन ने भारत का इस्तेमाल प्रोपेगंडा के मकसद से किया है।[114] संयुक्त राष्ट्र में अमेरिकी मिशन को साफ़ निर्देश भेजे गए थे कि "ताइवान जलडमरूमध्य के मौजूदा संकट में मेनन को या भारत को मध्यस्थ की भूमिका के लिए बिलकुल प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए।"[115] इसी संदेश को अमेरिकी विदेश मंत्रालय ने नई दिल्ली में अमेरिकी राजदूत को भेजा था, और उन्हें कहा गया था कि भारत सरकार को साफ़ कह दिया जाए कि अमेरिका इस संकट में इस वक्त कोई मध्यस्थ नहीं चाहता है।[116]

ब्रिटिश सरकार ने शुरुआत में अमेरिकियों पर दबाव डाला कि वे समाधान ढूंढ़ने में भारत को शामिल करें और (21 सितंबर, 1958 को) आइजनहावर और ब्रिटिश विदेश सचिव सेलविन लॉयड के बीच मुलाकात में इस पर चर्चा हुई और उसमें चाऊ की पार्थसारथी के साथ मुलाकात की जानकारी साझा की गई।[117] लेकिन अंग्रेज़ों को जल्दी ही समझ आ गया कि अमेरिकियों की इस आइडिया में दिलचस्पी नहीं थी।[118] बाद में, उनका उद्देश्य बन गया कि भारत का इस्तेमाल एशियाई जनमत को ताइवान के पक्ष में और चीन के विरुद्ध करने के लिए किया जाए। सेलविन लॉयड ने वॉशिंगटन में अपने राजदूत को बताया कि ताइवान के बारे में एक अधिक सकारात्मक भारतीय दृष्टिकोण "ना सिर्फ सबसे प्रमुख मुद्दा बनने वाले फॉर्मोसा के सवाल से निपटने में मददगार होगा, बल्कि कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ "दबाव" भी बनाएगा।"[119] अमेरिका, चीन और ब्रिटेन अब एक समान दृष्टिकोण के थे कि भारतीय मध्यस्थता सही नहीं है, हालांकि तीनों की वजहें अलग-अलग थीं, और इसलिए ताइवान जलडमरूमध्य के दूसरे संकट में कोई भूमिका निभाने की भारतीय कोशिशें काफी सीमित थीं। जो भी हो, भारत ने दूसरे संकट के दौरान गतिविधियों को प्रभावित करने की कोशिशें अपनी विदेश और राष्ट्रीय सुरक्षा नीतियों की ज़रूरतों के मुताबिक कीं।

1950 के दशक में ताइवान जलडमरूमध्य के दोनों संकटों के दौरान भारत की भूमिका से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

पहला, ताइवान पर चीन की संप्रभुता को भारत की स्पष्ट मान्यता का मतलब यह नहीं था कि ताइवान जलडमरूमध्य का सवाल भारतीय विदेश नीति के लिए अप्रासंगिक हो गया था। इसके विपरीत, उस क्षेत्र की गतिविधियां 1950 के दशक में विदेश नीति को गढ़ने में एक महत्वपूर्ण कारक थीं। भारत ने गहरी और सक्रिय रुचि ली और अपने उद्देश्यों के अनुसार कूटनीतिक कदम उठाए।

दूसरा, मुख्य उद्देश्य था क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा को बनाए रखना। चीनी जनवादी गणराज्य और अमेरिका के बीच बढ़ते तनावों का नकारात्मक असर इस क्षेत्र की शांति और सुरक्षा की संभावनाओं पर पड़ रहा था, इसलिए भारत ने महसूस किया कि ताइवान जलडमरूमध्य के सवाल में उसके वैध हित और चिंताएं थीं। संक्षेप में, भारत ने यह सिद्धांत स्थापित किया कि ताइवान जलडमरूमध्य में होने वाली घटनाओं में भारत की दिलचस्पी है जब इसमें शामिल पक्षों के कार्यों से तनाव और, संभावित रूप से, एक व्यापक संघर्ष की स्थिति बनी।

तीसरा, भारत ने महसूस किया कि चीन और अमेरिका दोनों के साथ इसके अच्छे रिश्तों ने उसे सीधे संवाद और तनाव घटाने के लिए अपनी "मदद" की पेशकश करने के काबिल बनाया है, और साथ ही यह दृष्टिकोण क्षेत्र में भारत के सामरिक हितों को भी पूरा करेगा। भारत यह पहचानने में असमर्थ रहा कि अमेरिका ने भारत की पेशकश को उसी दृष्टिकोण से नहीं देखा (और ना ही, चीन ने देखा, जिसने अपने उद्देश्यों के लिए भारत का इस्तेमाल किया)। उनके विपरीत दृष्टिकोणों का वर्णन ताइवान जलडमरूमध्य के पहले संकट की केस स्टडी में अल्फ्रेड डी. विल्हेम जूनियर ने इस तरह से किया था: "भारतीयों के लिए, जो चीनियों की तरह ही सौ सालों के पश्चिमी असर के बाद अपनी राष्ट्रीय पहचान को दोबारा स्थापित करने की कोशिश में थे, इस बातचीत ने एशियाई राजनीति में उनकी भूमिका को बढ़ाने का एक और मौका दिया। डलेस के दृष्टिकोण से, भारतीयों, खासकर कृष्णा मेनन की कोशिशों को चीन बढ़ावा दे रहा था और इनमें अमेरिका को नुकसान पहुंचाने वाले नतीजे पैदा करने की प्रवृत्ति थी।"[120] अमेरिका (और 1958 के संकट में चीन) ने भारत को पक्षपाती और पूर्वाग्रही के तौर पर देखा।

चौथा, तीसरी बड़ी अंतरराष्ट्रीय ताक़त ब्रिटेन के साथ भारत की नज़दीकी और लगाव ने भारत के कदम उठाने के तरीकों को प्रभावित किया। हालांकि ब्रिटेन ताइवान जलडमरूमध्य में सीधे तौर पर शामिल नहीं था लेकिन इस क्षेत्र में उसके महत्वपूर्ण हित (हॉन्गकॉन्ग और दूसरे उपनिवेशों समेत) थे। दोनों संकटों के दौरान भारत ने ब्रिटिश सरकार से सलाह ली। ऐसे परामर्श के पीछे की वजह समझी जा सकती थी (ब्रिटेन ने भारत पर 1947 तक राज किया था और दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध थे), लेकिन भारतीय नेतृत्व इस बात की पहचान करने में असमर्थ रहा कि ब्रिटेन दरअसल सुदूर पूर्व में अपने उद्देश्यों के लिए काम कर रहा था। कभी-कभी तो जानबूझकर, ब्रिटिश सरकार ने भारत की नीति का इस्तेमाल अमेरिकियों को अपनी बात मनवाने के लिए किया, और कभी अपने विचारों को भारत के माध्यम से चीन तक पहुंचाया। यह मान लेना संभव है कि, इस वजह से, भारतीय नीति और अपने भू-राजनीतिक उद्देश्यों के लिए काम करने के तरीके को एक तीसरे पक्ष के हितों और उद्देश्यों ने बिगाड़ दिया।

अंत में, ताइवान जलडमरूमध्य के दोनों संकटों के दौरान भारतीय कूटनीति से सबसे ज़्यादा करीब से जुड़ी शख्सियत, यानी कृष्णा मेनन ने भारत के राजनयिक प्रयासों को प्रभावित किया हो सकता है। अमेरिकी अभिलेखीय स्रोतों में कृष्णा मेनन के अहंकार और उपदेश देने की प्रवृत्ति का बार-बार संदर्भ मिलता है।[121] कई बार तो अमेरिकियों को यह भी महसूस हुआ कि वह चीन के साथ अपनी चर्चाओं के बारे में नेहरू को गुमराह कर रहे थे।[122] एक जगह पर, डलेस ने मेनन की कोशिशों को "खतरनाक"[123] बताया है, और ब्रिटिश विदेश सचिव हैरोल्ड मैकमिलन सहमत थे कि मेनन "चीज़ों को उलझा रहे थे" और भारतीय पक्ष "बहुत भरोसेमंद"[124] नहीं था।

1950 के दशक में ताइवान के मुद्दे को भारत ने किस तरह से संभाला और जब इसके एक बड़े एशियाई संघर्ष में बढ़ जाने का खतरा पैदा हुआ, तब किस तरह से कूटनीतिक कदम उठाए, इससे जुड़े ये संभावित सबक हमारे नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी हो सकते हैं जब वे इस बात पर चर्चा करेंगे कि भविष्य में ताइवान जलडमरूमध्य में ऐसे ही संकट से भारत किस तरह निपट सकता है।

ताइवान जलडमरूमध्य में किसी भावी संकट के समय भारत के लिए विकल्प

जब 1950 में भारत ने अपनी राजनयिक मान्यता चीनी जनवादी गणराज्य को दे दी, उसके बाद से शीत युद्ध के खत्म होने तक ताइवान के साथ भारत के कोई आधिकारिक या प्रत्यक्ष संबंध नहीं थे।[125] जब 1990 में भारत के सामने भुगतान-संतुलन का संकट आया, तब उसने गुप्त रूप से ताइवान से छोटी अवधि के कर्ज लेने की संभावनाओं को तलाशा (ताइवान के पास वैश्विक स्तर पर सबसे बड़े विदेशी मुद्रा भंडार में एक था), लेकिन इसके बदले में ताइवान भारत में औपचारिक उपस्थिति चाहता था, जो स्वीकार्य नहीं था।[126] हालांकि चीन के साथ रिश्तों के सामान्य होने के बाद नई संभावनाएं खुल गईं, और भारत ने ताइपे के साथ संपर्क स्थापित करने के विचार को गंभीरता से टटोला। आई.के. गुजराल (जो बाद में भारत के विदेश मंत्री और फिर

प्रधानमंत्री बने) की अगुवाई में ताइवान गए एक राजनीतिक प्रतिनिधिमंडल ने भारतीय प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंहा राव को रिपोर्ट दी कि अगर भारत वहां एक ऑफिस खोलता है तब देश में बड़े पैमाने पर ताइवानी निवेश की उम्मीद की जा सकती है। 1994 में, राव ने वरिष्ठ भारतीय कूटनीतिक वी.सी. खन्ना से कहा कि ताइपे के साथ आर्थिक संबंध स्थापित करना भारत के हित में होगा, "लेकिन हम चीनी जनवादी गणराज्य के साथ अपने रिश्तों को जोखिम में नहीं डाल सकते।"[127] उन्होंने खन्ना को ताइवान से निवेश और व्यापार आकर्षित करने और राजनीतिक मुद्दों से दूर रहने का जिम्मा सौंपा। 1995 में इंडिया-ताइपे एसोसिएशन के नाम से एक गैर-आधिकारिक संगठन स्थापित किया गया। खन्ना इसके पहले डायरेक्टर जनरल बने।[128]

शुरू से ही, भारतीय नीति-निर्धारक हलकों में यह स्पष्ट विचार था कि भारत उसी नीति का पालन करेगा जो 1950 में ताइपे से बीजिंग को राजनयिक मान्यता स्थानांतरित करने के बाद चल रही थी। ताइवान के समय-समय पर किए गए प्रयासों के बावजूद, रिपब्लिक ऑफ चाइना की औपचारिक मान्यता का सवाल कभी नहीं उठा। चीनी जनवादी गणराज्य ने भी इन घटनाक्रमों को सहजता से लिया। 1995-96 में तीसरे ताइवान जलडमरूमध्य संकट के दौरान भारत ने किसी भी तरह की प्रतिक्रिया या कदम उठाने से परहेज़ किया और चीन को उस पर अविश्वास करने की कोई वजह नहीं दी।[129] आने वाले वर्षों में, आर्थिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर दोनों पक्षों ने दोहरे कराधान, द्विपक्षीय निवेश, और नागरिक विमानन समझौतों पर काम किया ताकि अधिक व्यापार, निवेश, और लोगों के आने-जाने की रूपरेखा बनाई जाए। समझौतों को नीति के सख्त दायरे के भीतर रचनात्मक दृष्टिकोण और उपयुक्त भाषा के साथ सावधानीपूर्वक तैयार किया गया था। 2003 में, जून में चीन की अपनी सफल यात्रा के बाद, तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने महानिदेशक के रूप में एक सेवारत अधिकारी की नियुक्ति को मंजूरी दी।[130] आर्थिक और वाणिज्यिक गतिविधि तेज़ी से बढ़ी, लेकिन भारत सावधानी के साथ उन गतिविधियों से दूर रहा, जिन्हें राजनीतिक रंग दिया जा सकता है। 1995 के बाद से सभी भारतीय सरकारों ने इस नीति का मोटे तौर पर पालन किया है, भले ही राजनीतिक विचारधारा जो भी रही हो।

2018 में, विदेश मामलों पर लोकसभा की स्थायी समिति ने चिंता जताई कि "जबकि भारत ताइवान और तिब्बत के मामलों में चीन की संवेदनशीलता के बारे में साफ़ तौर पर सतर्क है, चीन भारत की संप्रभुता के मामलों में ऐसी मर्यादा नहीं दिखाता है, चाहे वह अरुणाचल प्रदेश का मुद्दा हो या पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में चीन-पाकिस्तान इकोनॉमिक कॉरिडोर (सीपीईसी) का।"[131] रिपोर्ट में यह भी कहा गया,

> इस तथ्य को देखते हुए कि भारत से जुड़े कुछ मुद्दों से निपटने में चीन का रुख बाहुबल दिखाने वाला है, समिति के लिए चीन के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने वाली भारत की पारंपरिक विदेश नीति से संतुष्ट रहना मुश्किल है। चीन जैसे देश के साथ निपटने के लिए अनिवार्य रूप से एक लचीले रुख की ज़रूरत है। समिति दृढ़ता से महसूस करती है कि सरकार को ऐसे रुख के अंग के तौर पर, ताइवान के साथ अपने संबंधों समेत हर विकल्प का इस्तेमाल करने पर विचार करना चाहिए।[132]

रणनीतिक समुदाय में कुछ लोगों ने भारत की ताइवान नीति में संशोधन की मांग की है क्योंकि वे महसूस करते हैं कि भारत की मुख्य चिंताओं पर चीन की असंवेदनशील कार्रवाई इस रणनीति पर पुनर्विचार करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए।[133]

नीति के किसी भी पुनर्मूल्यांकन या संशोधन के पहले उन परिस्थितियों को ध्यान में रखना ज़रूरी है जिनमें भारत ने चीनी जनवादी गणराज्य को राजनयिक मान्यता हस्तांतरित की थी। मोटे तौर पर, यह फैसला लागत-लाभ विश्लेषण पर आधारित था जब भारत ने महसूस किया था कि ऐसी परिस्थिति में किसी ऐसी सरकार को मान्यता ना देना, जो वाकई में एक पड़ोसी इलाके पर पूरा नियंत्रण रखने वाली थी और जिसके बाहर होने की कोई संभावना नहीं थी, भारत के हितों और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए हानिकारक हो सकता है। चीन के साथ अच्छे संबंधों को व्यापक क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में भारत के हितों के पक्ष में देखा गया था।[134] यह एक रणनीतिक नीतिगत निर्णय था। बेशक, नीतिगत निर्णय भी बदले जा सकते हैं। मौजूदा नीति में कोई बदलाव चीन की तरफ से प्रतिशोध भरे बड़े कदमों की वजह बन सकता है क्योंकि चीन के लिए यह एक दृढ़ सीमारेखा है। मान्यता के प्रश्न पर क्या नीति में बदलाव भारत के भू-राजनीतिक हितों को पूरा करता है, या क्या इससे होने वाले फायदे जोखिमों पर भारी पड़ते हैं?

एक और सवाल जिसका जवाब देने की ज़रूरत है कि क्या भारत ने 1949 में चीनी जनवादी गणराज्य को राजनयिक मान्यता देते वक्त "एक चीन" नीति के बारे में साफ़ बात कही थी या इसकी पुष्टि की थी?

राजनयिक संबंधों की शुरुआत करने के लिए चीनी जनवादी गणराज्य के साथ बातचीत के दौरान, भारत इस बात पर सहमत हुआ था कि वह चीनी गणराज्य के साथ आधिकारिक संबंध नहीं रखेगा या चीन के प्रतिनिधि के रूप में संयुक्त राष्ट्र में ताइवान की सदस्यता का समर्थन नहीं करेगा।[135] हालांकि, चीनी जनवादी गणराज्य को मान्यता देने के वक्त नेहरू[136] और चाऊ एनलाई[137] के बीच औपचारिक संवाद में किसी भी पक्ष ने एक चीन नीति का उल्लेख नहीं किया था। यह भी एक तथ्य है कि जब दिसंबर 1988 में प्रधानमंत्री राजीव गांधी की यात्रा (या दिसंबर 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ली पेंग की भारत यात्रा) के बाद जब रिश्ते सामान्य हुए थे, संयुक्त प्रेस विज्ञप्ति में एक चीन का कोई उल्लेख नहीं किया गया था। "एक चीन" का पहला उल्लेख चीन के राष्ट्रपति जियांग ज़ेमिन की भारत की राजकीय यात्रा के दौरान, 30 नवंबर, 1996 की चीन-भारत संयुक्त घोषणा में मिलता है।[138] इसके पीछे का इरादा चीन को यह भरोसा दिलाना हो सकता है कि 1995 में ताइपे में एक गैर-आधिकारिक दफ्तर खोलने के भारत के फैसले का मतलब नीति में बदलाव नहीं था। फिर भी एक दशक बाद (जिस दौरान द्विपक्षीय संयुक्त बयानों में कम से कम चार और बार इस तरह का उल्लेख किया गया था), 2009 में भारत ने एक चीन का उल्लेख करने की प्रथा को इस आधार पर बंद कर दिया था कि चीन संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता के मुद्दों पर भारतीय संवेदनशीलता के प्रति चिंता दिखाने को तैयार नहीं था।[139] वर्तमान सरकार ने 2014 में (तत्कालीन विदेश मंत्री सुषमा स्वराज के माध्यम से) साफ़-साफ़ कहा कि "भारत को एक चीन नीति पर सहमत करने के लिए, चीन को एक भारत की नीति की फिर से पुष्टि करनी चाहिए।"[140] एक चीन का कोई आधिकारिक उल्लेख ना करने की यह नीति भारत सरकार की बुनियादी राय और इरादे के अनुरूप है, मतलब कि 1949 में चीनी जनवादी गणराज्य को भारत की मान्यता के हस्तांतरण को किसी और स्पष्टीकरण की ज़रूरत नहीं है। इसलिए, भविष्य में, भारत को एक चीन का कोई भी उल्लेख, संयुक्त या एकल बयानों और विज्ञप्तियों में नहीं करना चाहिए।

ताइवान के मुकाबले चीन की संप्रभुता को मान्यता देने का आधिकारिक पक्ष भारत को ताइवान के साथ दोनों देशों की जनता के बीच आपसी संपर्क, व्यापार, व्यवसाय, शैक्षिक, या सांस्कृतिक संबंध बनाने से नहीं रोकता है। राष्ट्रपति चेन शुई-बियान (2000-08) की पहली डेमोक्रेटिक प्रोग्रेसिव पार्टी (डीपीपी) सरकार के दौरान, ताइवान ने गो साउथ पॉलिसी की घोषणा की जिसके दायरे में भारत को शामिल किया गया। ताइवान से निवेश लाने की तैयारी में कराधान, निवेश, और नागरिक उड्डयन से जुड़े कई समझौतों पर बातचीत की गई। इलेक्ट्रॉनिक्स, कंप्यूटिंग, और सेमीकंडक्टर सेक्टरों में कंपनियों को आकर्षित करने की कोशिशें की गईं। निवेश नहीं हो सका, कुछ इस वजह से कि ताइवानी पक्ष सिर्फ राजनीतिक मान्यता के लिए उनका फायदा उठाने में दिलचस्पी रखता था, साथ ही इस वजह से भी कि भारतीय पक्ष पर्याप्त रूप से आकर्षक स्थितियां और नीतियां नहीं उपलब्ध करा सका। ताइवान ने भारत में निवेश के माहौल के मानक चीन, मलेशिया, और थाइलैंड में मौजूद माहौल के समान रखे। भारत ताइवान की उम्मीदों पर खरा नहीं उतरा। 2016 में, राष्ट्रपति साई इंग-वेन का वर्तमान प्रशासन चार मुख्य क्षेत्रों- व्यापार सहयोग, प्रतिभा आदान-प्रदान, संसाधन साझेदारी, और क्षेत्रीय संपर्क- को ध्यान में रखते हुए न्यू साउथबाउंड पॉलिसी लेकर आया जिसमें दक्षिण एशिया को भी शामिल किया गया।[141] इस बार, चीनी बर्ताव की वजह से भारत में व्यापक आर्थिक जुड़ाव पर फोकस है और ताइवान ने भी उसके अनुसार प्रतिक्रिया दी है, लेकिन कामयाबी अपने आप नहीं मिलेगी और इस बात पर निर्भर करेगी कि भारतीय पक्ष डिलीवरी की प्रक्रिया और कंपनियों को पैर जमाने में सहयोग पर क्या कदम उठाता है।

1950 में चीनी जनवादी गणराज्य को भारत की मान्यता का भी मतलब, नीतिगत अर्थ में, यह नहीं था कि भारत सरकार ने जलडमरूमध्य के पार रिश्तों से जुड़ी गतिविधियों में आगे दिलचस्पी लेनी बंद कर दी। इसके विपरीत, 1950 के दशक में, ताइवान का मुद्दा भारत की विदेश नीति के निर्माण में केंद्र में रहा जैसा कि इस वर्किंग पेपर के दूसरे हिस्से में बताया गया है, और भारत ने घटनाक्रमों पर करीब से नज़र रखी और ज़रूरत पड़ने पर कूटनीतिक दखल दिया। कार्नेगी एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस के एक हालिया अध्ययन में बताया गया है कि किस तरह चीन तेज़ी से एक चीन नीति का इस्तेमाल ताइवान के सवाल पर दूसरे देशों की नीतियों को गढ़ने में करता है।[142] यह दावा करके कि यह सिद्धांत दुनिया भर में मान्य है, चीन वैधता की भावना स्थापित करने और उच्च नैतिक आधार लेने की कोशिश करता है जहां से यह दूसरों पर दबाव डालकर अपनी राय मनवा सके कि ताइवान के साथ जो कुछ भी होता है, वह सिर्फ एक द्विपक्षीय मामला है और इसकी चिंता किसी और पक्ष को नहीं होनी चाहिए। चीन का मकसद है ताइवान के साथ इसके

फिर से एकीकरण के रास्ते में किसी भी बाहरी भागीदारी की संभावना को खत्म करना, और इसके लिए वह भारत समेत बाकी देशों को यह महसूस कराना चाहता है कि ऐसी कार्रवाई उनकी अपनी नीति से मेल नहीं खाती है।[143] हालांकि, 1950 के दशक में, भारत ने ताइवान जलडमरूमध्य में शांति और स्थिरता के सवाल को संप्रभुता के सवाल से अलग कर दिया था। जहां तक ताइवान जलडमरूमध्य में शांति और स्थिरता का सवाल था, नेहरू ने अपने शब्दों और कार्यों, दोनों से यह बिलकुल साफ़ कर दिया था कि "जब [ताइवान जलडमरूमध्य में] कोई समस्या या निर्णय युद्ध या शांति का कारण बन सकता है, ऐसा युद्ध जो पूरी दुनिया में फैल सकता है, तब यह एक स्थानीय या महाद्वीपीय समस्या नहीं रह जाता है- यह एक वैश्विक समस्या बन जाता है।"[144] इस तरह "ताइवान जलडमरूमध्य में जो होता है, उसमें भारत का हित है" की नीति स्पष्ट रूप से स्थापित कर दी गई थी। आज के संदर्भ में भी यह नीति प्रासंगिक है क्योंकि ताइवान जलडमरूमध्य में तनाव या संघर्ष के नतीजे भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कहीं ज़्यादा नुकसान पहुंचाने वाले हो सकते हैं।

ताइवान जलडमरूमध्य में तनाव की अवधि के दौरान भारत को सक्रिय होने से रोकने के लिए चीन काफी ज़्यादा दबाव डाल सकता है। चीन संभावित रूप से दलील दे सकता है कि, एक चीन सिद्धांत के अलावा, भारत उस "क्षेत्र" का हिस्सा भी नहीं है जिसमें ताइवान जलडमरूमध्य स्थित है और इसलिए इसमें भारत के जुड़ने का कोई सवाल नहीं है। हालांकि, चीन खुद दक्षिण एशिया और उत्तरी हिंद महासागरीय क्षेत्रों में तनावपूर्ण परिस्थितियों में नियमित रूप से दखल देता है, यह दावा करते हुए कि भारत और दूसरे पड़ोसियों के बीच तनाव क्षेत्रीय स्थिरता को प्रभावित करता है और इसलिए यह चीन समेत, दूसरे देशों के लिए वैध चिंता का विषय है।[145] इसी तरह, भारत के पास भी चिंता व्यक्त करने और कूटनीतिक कदम उठाने की पूरी वजह मौजूद है, जब जलडमरूमध्य के पार के तनाव क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा को भंग करने का खतरा पैदा कर दें। कई दशकों तक, भारत ने अपनी समग्र चीन नीति के एक हिस्से के तौर पर अपनी प्रतिक्रिया और कदमों पर नियंत्रण रखा है। इसमें बदलाव होता दिखा जब, अमेरिकी प्रतिनिधि सभा की अध्यक्ष नैन्सी पेलोसी के ताइवान जाने के फैसले के बाद चीन ने सैन्य युद्धाभ्यास शुरू कर दिया और उसके बाद 12 अगस्त 2022 को, भारत ने ताइवान जलडमरूमध्य में घटनाक्रम पर चिंता व्यक्त की। यह बयान संतुलित था और इसमें सभी पक्षों से "संयम बरतने, यथास्थिति को बदलने के लिए इकतरफा कार्रवाइयों से बचने, तनाव को कम करने और क्षेत्र में शांति और स्थिरता बनाए रखने की कोशिशें करने का" आग्रह किया गया था।[146] अब से भारत को ताइवान जलडमरूमध्य में शामिल पक्षों के अस्थिर करने वाले व्यवहार के बारे में लगातार और विश्वसनीय तरीके से चिंताएं व्यक्त करना जारी रखना चाहिए।

घरेलू सामाजिक-आर्थिक और राष्ट्रीय सुरक्षा दोनों ही दृष्टिकोणों से ताइवान मुद्दे के महत्व को देखते हुए, इतना ही पर्याप्त नहीं होगा कि ताइवान जलडमरूमध्य को भारत की विदेश नीति निर्माण में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में फिर से स्थापित किया जाए। आंतरिक घटनाक्रमों (2024 में ताइवान में सरकार में बदलाव की संभावना समेत), चीन और ताइवान के बीच आवाजाही, और चीन, अमेरिका और ताइवान के बीच त्रिकोणीय समीकरणों के एक विस्तृत अध्ययन बिना देर किए ज़रूरी है। राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद सचिवालय को जिम्मा सौंपा जा सकता है कि वह भारतीय अर्थव्यवस्था पर ताइवान संकट के प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभाव के जोखिमों और उन्हें कम करने वाली नीतियों का समग्र सरकारी मूल्यांकन करे। इस मूल्यांकन के आधार पर, भारत सरकार आपातकालीन योजनाएं विकसित कर सकती है, साथ ही उन "खतरे के निशानों" की पहचान कर सकती है जो इन योजनाओं को लागू करने की वजह बन सकते हैं। अगर घरेलू अर्थव्यवस्था ऐसे किसी झटके के लिए तैयार नहीं है, तब भारत के लिए संभावित दुष्परिणाम अभी चल रहे रूस-यूक्रेन युद्ध के असर की तुलना में कहीं ज़्यादा व्यापक होंगे।

अगर किसी संकट की शुरुआत होती है, भारत को फैसला लेना पड़ सकता है कि क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा को बनाए रखने के हित में किस तरह का राजनयिक कदम उठाया जाए। 1950 के दशक में, क्षेत्रीय शांति बनाए रखने के महत्व के बारे में सरकार की रणनीतिक दूरदृष्टि सही थी, क्योंकि ऐसा करना भारत के बुनियादी हित में था। हालांकि, स्व-हित में काम करने और सही या नैतिक काम करने के बीच परस्पर विरोधी उद्देश्य भारत को एक उलझाव भरी नीति अपनाने की तरफ ले गए। इस गलती को और गहरा दिया राष्ट्रीय एजेंडा के साथ वी.के.कृष्णा मेनन के निजी एजेंडा के घालमेल ने, जो 1950 के दशक में ताइवान जलडमरूमध्य के दोनों संकटों के दौरान भारतीय राजनय का चेहरा थे। अगर, 1950 के दशक में, यह यकीन करने के अच्छे कारण थे कि चीन एशिया-प्रशांत में एक साझीदार बनेगा, और कि चीन और अमेरिका दोनों के साथ भारत के अच्छे संबंधों ने भारत को कूटनीतिक मध्यस्थ के रूप में काम करने की स्थिति में रखा है, 2020 के दशक में ऐसे हालात नहीं रहे हैं। भारत की अमेरिका के साथ बहुआयामी और रणनीतिक भागीदारी है। दूसरी तरफ, चीन भारत को "तटस्थ" नहीं बल्कि अमेरिकियों की तरफ झुकाव रखने वाला मानता है।[147] चूंकि बीजिंग दूसरों

को उनके कार्यों से आंकने की बात करता है- 2017 से चीन की कार्रवाइयां, जिनमें पूरी वास्तविक नियंत्रण रेखा के नज़दीक इसकी गतिविधियां और सीमावर्ती क्षेत्रों के करीब हाल में सैन्य बलों के स्तर में बड़े पैमाने पर बढ़ोतरी[148] के साथ-साथ नई दिल्ली में पिछले चीनी राजदूत (जो अक्टूबर 2022 में चले गए) का विकल्प लंबे समय तक मौजूद ना रहना, संकेत देती हैं कि चीन भारत को पक्षपाती और समस्या पैदा करने वाला मानता है। ऐसे हालातों में, किसी भावी संकट का समाधान निकालने में दो मुख्य पक्षों की मदद के लिए राजनयिक कदम उठाने की संभावना ना तो व्यावहारिक है और ना ही संभव। भारत का राष्ट्रीय हित तनाव को टालने और ताइवान जलडमरूमध्य में शांति भंग होने से रोकने में है। भारत राजनयिक कदमों का एक सेट बना सकता है जो, अकेले या सामूहिक रूप से भारत को उसका उद्देश्य हासिल करने में मदद करे।

भारतीय कदमों का इसके साझीदारों के साथ किस हद तक समन्वय होता है, इसका फैसला ताइवान जलडमरूमध्य में वास्तविक संकट के आकार और हालातों के आधार पर नीति-निर्माता लेंगे। एक प्रमुख अमेरिकी थिंक टैंक के हालिया आकलन में कहा गया है कि सिंगापुर, वियतनाम और थाइलैंड के साथ-साथ भारत "चीनी अतिक्रमण के बारे में चिंतित होगा लेकिन चीनी ताक़त का डर भी रहेगा। उनकी सहानुभूति अमेरिका और ताइवान के साथ रहेगी लेकिन चीनी हमले का शिकार खुद को बनाने के अनिच्छुक होगे। वे सक्रिय रुख नहीं अपनाएंगे, अमेरिका को अपने आसमान से विमान उड़ाने और गुज़रने की अनुमति देंगे लेकिन ना तो खुद हिस्सा लेंगे और ना ही अपने इलाके से कामकाज करने की अनुमति देंगे।"[149] म्युनिख सिक्योरिटी कॉन्फ्रेंस 2023 में हाल में एक यूरोपीय आकलन में इसी तरह ताइवान के प्रति चीन के आक्रामक व्यवहार के ख़िलाफ़ क्षेत्रीय प्रतिरोध निर्माण के संदर्भ में भारत का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।[150] ऐसे आकलन दिखाते हैं कि बाकी दुनिया भारत के कदमों के बारे में स्पष्ट नहीं है अगर जलडमरूमध्य में कोई संकट खड़ा होता है। यह महत्वपूर्ण है कि इस मसले पर भारत के सहयोगियों को स्पष्टता हो ताकि भारत के पक्ष को गलत ढंग से ना समझा जाए।

इसके लिए, सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण काम है कि दो मुख्य खिलाड़ियों की अपेक्षाओं और उनके भारत से अपेक्षित कदमों का खाका बनाया जाए।

जहां तक चीन का संबंध है, वो पसंद करेगा कि भारत "तटस्थ" रहे, लेकिन वो मानकर चलेगा कि भारत के अमेरिका की तरफ "झुकने" की संभावना है। इसलिए, चीन के कदम इस झुकाव को रोकने या एक और मोर्चे के संभावित खतरे को कम करने के इरादे से उठाए हो सकते हैं। यह कदम तेवर दिखाने (बड़े पैमाने पर सेना या परमाणु हथियारों की तैनाती), वास्तविक नियंत्रण रेखा के नज़दीक आक्रामक रवैया (अकेले या पाकिस्तान के साथ), या, मामला चरम सीमा पर पहुंच गया तो धमकाने के इरादे से सीमित हमले के रूप में हो सकता है। भावी परिदृश्यों के आधार पर, भारतीय रणनीतिकारों को परिदृश्य बिगड़ने के क्रम में अपनी प्रतिक्रियाओं का तौर-तरीका विकसित करने की ज़रूरत है, अगर चीन ऐसा कोई कदम उठाता है। ऐसा करते वक्त इस बात को ध्यान में रखना होगा कि निकट भविष्य में व्यापक राष्ट्रीय शक्ति या सीमा पर बुनियादी ढांचे के मामले में भारत और चीन की गैर-बराबरी नहीं बदलेगी, और इसलिए भारत को सीमा पर बढ़ते तनावों के लिए तैयारी करनी होगी अगर चीन को महसूस होता है कि ताइवान जलडमरूमध्य के अगले संकट में अमेरिका की मदद करने से भारत को रोकने का उचित तरीका है ग्रे-ज़ोन युद्ध। 1950 के दशक से जिस एक महत्वपूर्ण सबक को दोबारा याद करने की ज़रूरत है, वह यह है कि चीन बहुपक्षीय संघर्ष को लेकर समान रूप से चिंतित है।[151] भारत को चीन को याद दिलाना चाहिए कि उसकी भी कमज़ोरियां हैं। अमेरिका की तरफ भारतीय झुकाव को रोकने भर के लिए चीन की दक्षिण-पश्चिमी सीमा के करीब संघर्ष का बोझ सिर्फ भारत पर डालकर चीन को उसकी जवाबदेही से आज़ाद होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।[152] अगर भारत के राष्ट्रीय हितों पर सीधा खतरा आता है, तब सारे विकल्प मौजूद रहने चाहिए। हालांकि, यह विकट परिस्थितियों वाला मामला होगा। व्यापक उद्देश्य होना चाहिए ताइवान जलडमरूमध्य में शांति और स्थिरता को बनाए रखना, और भारत को हरसंभव कोशिश करनी चाहिए कि बिना किसी विकल्प को बंद किए किसी भी रूप के युद्ध की संभावना को रोका जाए।

अमेरिका मानता है कि ताइवान पर चीन का आक्रमण भारत को दुविधा में डाल देगा। एक तरफ, भारत चीन की मज़बूत होती स्थिति से चौकन्ना होगा, जो ताइवान पर जीत के बाद हो सकता है, और भारत के पास अमेरिका के साथ दोस्ती की वजहें होंगी। दूसरी तरफ, भारत उन खतरों से भी सावधान रहेगा जो इस भागीदारी से पैदा होंगे। इस बात की संभावना नहीं है कि भारत सक्रिय रूप से हिस्सा लेगा (जब तक कि सीधा खतरा ना हो) अगर युद्ध की स्थिति बनती है, लेकिन अमेरिका को फिर भी उस दौरान भारत से किसी तरह के समर्थन की उम्मीद रहेगी। सीएसआईएस के एक पेपर में अहम बात कही गई है कि, यूक्रेन के मामले के विपरीत, अमेरिका ना तो ताइवान में बड़े पैमाने पर सेना की तैनाती में कामयाब होगा, और ना ही वह युद्ध शुरू होने के

बाद अपने सैनिकों को उतारने या रसद और युद्ध सामग्री में महत्वपूर्ण बढ़ोतरी कर पाएगा। इसका मतलब है कि अमेरिका को युद्ध के पहले ही लॉजिस्टिक और बेस बनाने के सारे इंतजाम करने होंगे। रिपोर्ट में अंदाज़ा लगाया गया है कि चीन के शुरुआती मिसाइल हमले आगे की तरफ तैनात अमेरिका के विमानों और नौसैनिक ताक़त को तबाह कर सकते हैं।[153] इस वजह से युद्ध के पहले की वैसी तैनाती जो चीन की मारक क्षमता के लिए भौगौलिक रूप से कम असुरक्षित हैं, अमेरिका के लिए युद्ध जीतने की कोशिश लिहाज से महत्वपूर्ण हो जाती हैं। यह मानना अनुचित नहीं है कि अमेरिका भारत से लॉजिस्टिकल मदद मांगेगा, संभवतः अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह के इस्तेमाल समेत। चीन इन्हें खतरे की निशानियों के तौर पर देख सकता है। भारत को इस बारे में एक स्पष्ट दृष्टिकोण रखने की ज़रूरत है कि युद्ध के पूर्व की परिस्थिति में क्या किया जाए जब अमेरिका युद्ध की तैयारियां कर रहा हो, साथ ही युद्ध के दौरान क्या किया जाए जब वॉशिंगटन नई दिल्ली के सामने कोई मांग रखे। इसके लिए अमेरिका के उद्देश्यों, रणनीति और सामरिक अपेक्षाओं की उचित समझ की ज़रूरत है।

इन वजहों से, ताइवान जलडमरूमध्य का मुद्दा प्रमुख भागीदारों के साथ सभी बातचीत के एजेंडे में रखना चाहिए। चीन का मुकाबला करने के जोखिमों और फायदों पर अपने सहयोगियों के साथ निश्चित रूप से भारत के मतभेद होंगे, लेकिन शांति काल में और संकट सामने नहीं रहने पर सहमति और मतभेद के बिंदुओं और अपने सहयोगियों की अपेक्षाओं के बारे में एक साफ़ आइडिया काफी अहम जानकारी मुहैया करा देगा। इससे ताइवान जलडमरूमध्य में किसी संकट की स्थिति में आपातकाल को ध्यान में रखते हुए पहले से तैयारियां करने में मदद मिलेगी। सहयोगी देशों के साथ समझौतों में बेहतर समन्वय और मेल-जोल के इंतजाम को ज़रूर शामिल करना चाहिए। ताइवान पर एक समान उद्देश्य- उदाहरण के लिए ताइवान के आज़ादी की दिशा में कोई कदम बढ़ाए बगैर यथास्थिति को कैसे बनाए रखा जा सकता है[154]- रखने वाले यूरोपीय देशों समेत द्विपक्षीय भागीदारों के साथ अनुशासित संवाद का एक ढांचा तैयार करने को भी प्राथमिकता मिलनी चाहिए। ऐसी ही कोशिश आसियान के साथ भी होनी चाहिए जो मोटे तौर पर भारत के लक्ष्य के साथ सहमत है। हालात पर लगातार निगरानी और विदेशी हितधारकों के साथ नियमित तौर पर जानकारी का लेन-देन ज़रूरी है ताकि भारत कमज़ोर स्थिति में ना छूट जाए।

यूरोपीय संघ के साथ एक साझा दृष्टिकोण बनाने के लिए भारत निम्नलिखित कदमों को उठाने की सोच सकता है। पहला, दोनों अपने बयानों की भाषा एक जैसी रखकर यह संदेश दे सकते हैं कि भारत की चिंताएं दूसरे देशों की चिंताएं भी हैं। दूसरा, दोनों भारत-प्रशांत क्षेत्र के अन्य देशों के बीच और, आम तौर पर ग्लोबल साउथ (आर्थिक तौर पर पिछड़े देशों) में उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर ताइवान जलडमरूमध्य में किसी युद्ध के संभावित परिणामों के बारे में ज़्यादा जागरूकता फैला सकते हैं। हिंद महासागर और अफ्रीका में बसे ज़्यादातर देशों को स्पष्ट ही नहीं है कि उनके लिए क्या परिणाम हो सकते हैं और, जब उन्हें इसके बारे में बताया जाएगा, उनका झुकाव भारत और दूसरे देशों की उन आवाज़ों की तरफ हो सकता है जो ताइवान जलडमरूमध्य में शांति और स्थिरता बनाए रखना चाहते हैं। तीसरा, यूरोपीय संघ के साथ, भारत को "जोखिम खत्म करने वाले" (उनके हितों से खुद को अलग करने वाले नहीं) उपायों पर केंद्रित चर्चा करनी चाहिए जो दोनों पक्षों के लिए फायदेमंद हों। चीन पर अति-निर्भरता के जोखिम को कम करने के लिए, यूरोपीय व्यवसाय निवेश के वैकल्पिक स्थानों की तलाश में हैं। भारत को एक व्यावहारिक भागीदार के तौर पर खुद को पेश करना चाहिए। ऐसा होने के लिए ताइवान जलडमरूमध्य में संभावित जोखिमों के बारे में दोनों पक्षों के नीति-निर्माताओं के बीच एक संवाद भी ज़रूरी है। आसियान और भारत-प्रशांत क्षेत्र की दूसरी मझोली ताक़तें ऐसा करने के लिए कम इच्छुक हो सकती हैं, इस डर की वजह से कि चीन क्या सोच सकता है। फिर भी, उनके साथ संतुलित बातचीत से फायदे हो सकते हैं क्योंकि सभी के लिए शुरुआती बिंदु यही है कि पूरे क्षेत्र में आर्थिक सुरक्षा और समृद्धि के लिए ज़रूरी शर्त है ताइवान जलडमरूमध्य में शांति और स्थिरता। ताइवान जलडमरूमध्य में हालात बिगड़ने के खिलाफ जितनी बड़ी तादाद में देश एक सुर में बात करेंगे, उतनी अधिक संभावना है कि वैश्विक जनमत उन लोगों के लिए प्रतिरोधक का काम कर सकता है जो एक संकट को पैदा करने की कोशिश करते हैं।

अंत में, इस परिदृश्य के निर्माण के लिए तैयार रहना चाहिए कि दोनों प्रमुख शक्तियां किसी समझौते पर पहुंच सकती हैं। सीएसआईएस के अध्ययन में कहा गया है कि संकट का गहराना, लंबा खिंचना, या गतिरोध पैदा होना अमेरिका में रणनीतिक मोहभंग की वजह बन सकता है। मानवीय, वित्तीय, और सैन्य लागत अमेरिकियों को इस सवाल की तरफ ले जा सकते हैं कि क्या ताइवान के बचाव की कीमत के तौर पर इतनी कुर्बानियां जायज हैं, खास तौर पर तब जब किसी चीन-अमेरिका युद्ध का नतीजा निर्णायक नहीं होगा।[155] हमें याद रखना चाहिए कि 1959 और 1962 के बीच ताइवान के मसले पर महाशक्तियों (चीन और अमेरिका) के आपसी समीकरण तेज़ी से बदल गए, और भारत एक कमज़ोर स्थिति में आ गया। 1950 के दशक का एक और

सबक नहीं भूलना चाहिए, जब एक अन्य महाशक्ति (ब्रिटेन) ने अपने स्वार्थ पूरे करने के लिए भारत की धारणाओं को आकार देने और उसके कदमों को प्रभावित करने की कोशिश की।

निष्कर्ष

पश्चिमी प्रशांत क्षेत्र में चीन और अमेरिका के बीच बढ़ती प्रतिद्वंद्विता लंबे समय तक चलने की संभावना है। किसी संभावित संघर्ष के लिए सबसे संवेदनशील जगह है ताइवान। ताइवान जलडमरूमध्य में किसी भी तरह का संघर्ष, या बढ़ता तनाव भी भारतीय आर्थिक और राष्ट्रीय सुरक्षा हितों पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकता है। भारत के विदेशी व्यापार और प्रमुख भारतीय एक्सपोर्ट सेक्टरों (फार्मा, इलेक्ट्रॉनिक्स और सेमीकंडक्टर्स) की निर्भरता वाले सप्लाई चेन पर स्पष्ट और तत्काल प्रभाव के अलावा, ग्लोबल शिपिंग में बड़े पैमाने पर रुकावट, ट्रांसपोर्टेशन इंश्योरेंस की बढ़ती लागत, और डेटा की आवाजाही में रुकावट जैसे असर भी होंगे जो भारतीय खज़ाने पर बहुत बड़ा असर डालने वाली बेरोज़गारी की वजह बनेंगे। साथ ही, इस संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि अगर चीन को लगता है कि भारत एक अतिरिक्त खतरा है तब वह वास्तविक नियंत्रण रेखा पर एक और फौजी कार्रवाई शुरू कर सकता है।

इसलिए, ताइवान जलडमरूमध्य में जो कुछ भी होता है वह भारत की विदेश और राष्ट्रीय सुरक्षा नीति का अभिन्न अंग होना चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था पर ताइवान के किसी संभावित संकट के भावी प्रभाव का आकलन करने और उस प्रभाव को कम करने के तरीकों की पहचान करने की तत्काल आवश्यकता है। इस तरह के मूल्यांकन में देरी करना बहुत महंगा साबित हो सकता है क्योंकि घरेलू अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों को मज़बूती देने और चीन और पूर्वी एशिया पर निर्भरता कम करने की महत्वपूर्ण तैयारियों में समय लगेगा। इसके लिए पूरे सरकारी अमले के सामूहिक प्रयास की ज़रूरत होगी।

देश के बाहर, भारत का रणनीतिक हित यह सुनिश्चित करने में है कि ताइवान जलडमरूमध्य में शांति और स्थिरता बनी रहे। इसलिए, भारत को इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए राजनयिक प्रयास ज़रूर करने चाहिए, ना सिर्फ दोनों प्रमुख खिलाड़ियों को अपनी चिंताएं बताने के संदर्भ में, बल्कि अपने सहयोगियों के व्यापक समूह के साथ अनुशासित परामर्श के माध्यम से भी, ताकि किसी संकट के खड़े होने पर उनके इरादों के बारे में स्पष्टता रहे और उन्हें अलग-अलग हालातों में भारत की संभावित प्रतिक्रिया की भी जानकारी रहे। अंत में, एक भावी संकट की तैयारी के लिए भारत को चीन और अमेरिका की संभावित अपेक्षाओं को ध्यान रखने की ज़रूरत है, साथ ही उन दबावों के जवाब में प्रतिक्रियाओं की सूची (बढ़ते क्रम में) बनाने की ज़रूरत है जो दोनों पक्ष भारत पर बना सकते हैं।

लेखक का परिचय

विजय गोखले कार्नेगी इंडिया में एक नॉन-रेसिडेंट सीनियर फेलो हैं। गोखले जनवरी 2020 में भारतीय विदेश सेवा से 39 सालों के राजनयिक करियर के बाद सेवानिवृत्त हुए। जनवरी 2018 से जनवरी 2020 तक वे भारत के विदेश सचिव रहे।

विदेश सचिव के रूप में अपने कार्यकाल के पहले, गोखले ने जनवरी 2010 से अक्टूबर 2013 तक मलेशिया में भारत के उच्चायुक्त, अक्टूबर 2013 से जनवरी 2016 तक फेडरल रिपब्लिक ऑफ जर्मनी में भारत के राजदूत, और जनवरी 2016 से अक्टूबर 2017 तक चीनी जनवादी गणराज्य में भारत के राजदूत के रूप में अपनी सेवाएं दीं। जुलाई 2003 से जनवरी 2007 तक उन्होंने ताइवान में, भारत-ताइपे एसोसिएशन के प्रमुख के तौर पर काम किया। विदेश मंत्रालय के मुख्यालय में अपने कार्यकाल के दौरान, उन्होंने ईस्ट एशिया डिवीज़न में महत्वपूर्ण पदों पर भी काम किया, जिनमें मार्च 2007 से दिसंबर 2009 तक ईस्ट एशिया के लिए संयुक्त सचिव (महानिदेशक) का पद भी शामिल है।

उन्होंने चीनी राजनीति और कूटनीति में विशेषज्ञता के साथ भारत-प्रशांत क्षेत्र से संबंधित मामलों पर बड़े पैमाने पर काम किया है। विदेश सेवा से अपनी सेवानिवृत्ति के बाद से, गोखले ने न्यूयॉर्क टाइम्स, फॉरेन पॉलिसी, दि हिंदू, दि टाइम्स ऑफ इंडिया और इंडियन एक्सप्रेस के लिए कई लेख लिखे हैं। वह तीन हालिया पुस्तकों के लेखक भी हैं: तियानमेन स्क्वायर: द मेकिंग ऑफ ए प्रोटेस्ट (हार्पर कॉलिन्स इंडिया, मई 2021), द लॉन्ग गेम: हाउ द चाइनीज नेगोशिएट विद इंडिया (पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, जुलाई 2021), और आफ्टर तियानमेन: द राइज़ ऑफ़ चाइना (हार्पर कॉलिन्स इंडिया, सितंबर 2022)।

आभार

लेखक श्याम सरन, शिवशंकर मेनन, मिक्को हुओतारी, और रुद्र चौधरी का उनकी पैनी दृष्टि वाली टिप्पणियों और सलाह के लिए आभार व्यक्त करते हैं और उन्हें धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस शोध पत्र में सुधार किया है। वो साहेब सिंह चड्ढ़ा को भी उनकी शोध सहायता के लिए धन्यवाद देते हैं।

नोट्स

1. Cancian, Mark F., Matthew Cancian, and Eric Heginbotham. "The First Battle of the Next War: Wargaming a Chinese Invasion of Taiwan." CSIS | Center for Strategic & International Studies, January 9, 2023. https://www.csis.org/analysis/first-battle-next-war-wargaming-chinese-invasion-taiwan.
2. 7 मार्च 2023 को चीनी विदेश मंत्री के रूप में अपने पहले प्रेस कॉन्फ्रेंस में क़िन गांग ने कहा कि: "ताइवान चीनी जनवादी गणराज्य के पवित्र क्षेत्र का हिस्सा है। मातृभूमि को फिर से एक करने के महान कार्य को पूरा करना, ताइवान में हमारे हमवतन लोगों समेत, सभी चीनी लोगों का पवित्र कर्तव्य है।" देखें चीनी जनवादी गणराज्य का विदेश मंत्रालय। "विदेश मंत्री क़िन गांग की प्रेस से मुलाकात," 7 मार्च, 2023. https://www.fmprc.gov.cn/mfa_eng/zxxx_662805/202303/t20230307_11037190.html.
3. भारत-प्रशांत क्षेत्र पर राष्ट्रपति के डिप्टी असिस्टेंट और को-ऑर्डिनेटर कर्ट कैंपबेल ने 12 अगस्त 2022 को एक ऑन-द-रिकॉर्ड प्रेस कॉल में कहा: "हम ताइवान संबंध अधिनियम के तहत अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा करना जारी रखेंगे। इसमें ताइवान की आत्मरक्षा का समर्थन करना और ताइवान की सुरक्षा, अर्थव्यवस्था या समाज को खतरे में डालने वाले बल या अन्य प्रकार के ज़बरदस्ती के किसी भी उपाय का विरोध करने की अपनी क्षमता को बनाए रखना शामिल है। देखें व्हाइट हाउस। "भारत-प्रशांत क्षेत्र के लिए राष्ट्रपति के डिप्टी असिस्टेंट और को-ऑर्डिनेटर कर्ट कैंपबेल द्वारा ऑन-द-रिकॉर्ड प्रेस कॉल," 12 अगस्त, 2022. https://www.whitehouse.gov/briefing-room/press-briefings/2022/08/12/on-the-record-press-call-by-kurt-campbell-deputy-assistant-to-the-president-andcoordinator-for-the-indo-pacific/.
4. "Bridging the Gap: Priorities for Transatlantic China Policy." Washington, D.C., Berlin, and Munich: Aspen Strategy Group, the Mercator Institute for China Studies, and the Munich Security Conference, February 2023. https://www.aspeninstitute.org/wp-content/uploads/2023/02/ASG-MERICS-MSC-Report-2023- Bridging-the-Gap-final.pdf.
5. "2021 Report to Congress." Washington, D.C.: U.S.-China Economic And Security Review Commission, November 2021. https://www.uscc.gov/sites/default/files/2021-11/2021_Annual_Report_to_Congress.pdf.
6. Feigenbaum, Evan A., and Adam Szubin. "What China Has Learned From the Ukraine War." Foreign Affairs, February 14, 2023. https://www.foreignaffairs.com/china/what-china-has-learned-ukraine-war.
7. Blanchette, Jude, and Ryan Hass. "The Taiwan Long Game." Foreign Affairs, December 20, 2022. https:// www.foreignaffairs.com/china/taiwan-long-game-best-solution-jude-blanchette-ryan-hass.
8. 1960 में, चीन की जीडीपी ($59.72 अरब) अमेरिका की जीडीपी ($543.3 अरब) का करीब दसवां हिस्सा थी। उसके मुकाबले, 2021 में चीन की जीडीपी ($17.73 लाख करोड़) अमेरिका की जीडीपी ($23.3 लाख करोड़) के तीन-चौथाई से ज़्यादा बड़ी है। देखें वर्ल्ड बैंक. "GDP (Current US$) - United States | Data." Accessed March 13, 2023. https://data.worldbank.org/indicator/NY.GDP.MKTP.CD?locations=US; The World Bank. "GDP (Current US$) - China | Data." Accessed March 13, 2023. https://data.worldbank.org/indicator/NY.GDP.MKTP.CD?locations=CN..
9. Blanchette, Jude, and Ryan Hass. "The Taiwan Long Game." Foreign Affairs, December 20, 2022. https:// www.foreignaffairs.com/china/taiwan-long-game-best-solution-jude-blanchette-ryan-hass.
10. CBS News. "President Joe Biden: The 2022 60 Minutes Interview," September 18, 2022. https://www.cbsnews.com/news/president-joe-biden-60-minutes-interview-transcript-2022-09-18/.
11. NPR. "Biden's National Security Adviser Is Hopeful War over Taiwan Can Be Prevented," January 6, 2023. https://www.npr.org/2023/01/06/1147113733/jake-sullivan-taiwan-china-diplomacy
12. Ministry of Foreign Affairs of the People's Republic of China. "President Xi Jinping Speaks with US President Joe Biden on the Phone," July 29, 2022. https://www.fmprc.gov.cn/eng/zxxx_662805/202207/t20220729_10729593.html.
13. Ministry of Foreign Affairs of the People's Republic of China. "Foreign Minister Qin Gang Meets the Press," March 7, 2023. https://www.fmprc.gov.cn/mfa_eng/zxxx_662805/202303/t20230307_11037190.html.

14. See Cancian, Mark F., Matthew Cancian, and Eric Heginbotham. "The First Battle of the Next War: Wargaming a Chinese Invasion of Taiwan." CSIS | Center for Strategic & International Studies, January 9, 2023. https://www.csis.org/analysis/first-battle-next-war-wargaming-chinese-invasion-taiwan; "Bridging the Gap: Priorities for Transatlantic China Policy." Washington, D.C., Berlin, and Munich: Aspen Strategy Group, the Mercator Institute for China Studies, and the Munich Security Conference, February 2023. https://www.aspeninstitute.org/wp-content/uploads/2023/02/ASG-MERICS-MSC-Report-2023-Bridgingthe-Gap-final.pdf; Barss, Edward. "Past Patterns and Present Provocations: China's Electoral Interference in Taiwan's Local Elections." Global Taiwan Institute, September 7, 2022. https://globaltaiwan.org/2022/09/past-patterns-and-present-provocations-chinas-electoral-interference-in-taiwans-local-elections/; Martin, Bradley, Kristen Gunness, Paul DeLuca, and Melissa Shostak. "Implications of a Coercive Quarantine of Taiwan by the People's Republic of China." Research Report. RAND Corporation, 2022. https://www.rand.org/pubs/research_reports/RRA1279-1.html.
15. Martin, Bradley, Kristen Gunness, Paul DeLuca, and Melissa Shostak. "Implications of a Coercive Quarantine of Taiwan by the People's Republic of China." Research Report. RAND Corporation, 2022. https://www.rand.org/pubs/research_reports/RRA1279-1.html.
16. भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा: "भारत-प्रशांत क्षेत्र एक प्राकृतिक क्षेत्र है। यह बड़े पैमाने पर वैश्विक अवसरों और चुनौतियों का घर भी है। हर बीतते दिन के साथ मेरा यकीन बढ़ता जा रहा है कि इस क्षेत्र में रहने वाले हम लोगों की नियति आपस में जुड़ी हुई हैं। आज, एक साथ काम करने के लिए विभाजन और प्रतिस्पर्धा से ऊपर उठने का हमारा आह्वान किया जा रहा है।". See PMINDIA. "PM's Keynote Address at Shangri La Dialogue," June 1, 2018. https://www.pmindia.gov.in/en/news_updates/pms-keynote-address-at-shangri-la-dialogue/.
17. इसकी वजह थी चीन के साथ भारत की द्विपक्षीय समस्याएं – दलाई लामा 1959 में तिब्बत से भाग गए थे और भारत में शरण लेकर बस गए थे, और भारत-चीन सीमा के विवाद (जो अभी भी सुलझे नहीं हैं) सामने आ रहे थे।
18. Goldstein, Steven M. ""Dialogue of the Deaf?: The Sino-American Ambassadorial-Level Talks, 1955-1970." In Re-Examining the Cold War: U.S.-China Diplomacy, 1954–1973, 1st ed., 203:200–237. Harvard University Asia Center, 2001. https://doi.org/10.2307/j.ctt1tg5nbr.
19. लेखक इसे चीन के सीमा संघर्षों के घरेलू औचित्य के व्यापक संदर्भ में पेश करते हैं, जो ग्रेट लीप फॉरवर्ड नीति की नाकामी के बाद अपने साथियों के साथ माओ की राजनीतिक लड़ाई का नतीजा थे। See Jun, Niu. "1962: The Eve of the Left Turn in China's Foreign Policy." Working Paper. Cold War International History Project. Washington, D.C.: Woodrow Wilson International Center for Scholars, October 2005. https://www. wilsoncenter.org/sites/default/files/media/documents/publication/NiuJunWP481.pdf.
20. ChinaPower Project. "How Much Trade Transits the South China Sea?," August 2, 2017. https://chinapower.csis.org/much-trade-transits-south-china-sea/.
21. Vest, Charlie, Agatha Kratz, and Reva Goujon. "The Global Economic Disruptions from a Taiwan Conflict." Rhodium Group, December 14, 2022. https://rhg.com/research/taiwan-economic-disruptions/.
22. Hsiao, Russell. "Taiwan's Economic Minister Warns about the Economic Consequences of Chinese Aggression." Global Taiwan Institute, October 19, 2022. https://globaltaiwan.org/2022/10/taiwans-economic-minister-warns-about-the-economic-consequences-of-chinese-aggression/.
23. Hsu, Sara. "Potential Logistical and Operational Costs of a China-Taiwan Conflict." The Diplomat, August 17, 2022. https://thediplomat.com/2022/08/potential-logistical-and-operational-costs-of-a-china-taiwan-conflict/.

24. Vest, Charlie, Agatha Kratz, and Reva Goujon. "The Global Economic Disruptions from a Taiwan Conflict." Rhodium Group, December 14, 2022. https://rhg.com/research/taiwan-economic-disruptions/.
25. McDaniel, Christine, and Weifeng Zhong. "The China Challenge: Risks to the U.S. Economy If China Invades Taiwan in Seven Charts." Discourse, September 15, 2022. https://www.discoursemagazine.com/politics/2022/09/15/if-china-invades-taiwan-risks-to-the-u-s-economy-in-seven-charts/.
26. McDaniel, Christine, and Weifeng Zhong. "The China Challenge: Risks to the U.S. Economy If China Invades Taiwan in Seven Charts." Discourse, September 15, 2022. https://www.discoursemagazine.com/politics/2022/09/15/if-china-invades-taiwan-risks-to-the-u-s-economy-in-seven-charts/.
27. Vest, Charlie, Agatha Kratz, and Reva Goujon. "The Global Economic Disruptions from a Taiwan Conflict." Rhodium Group, December 14, 2022. https://rhg.com/research/taiwan-economic-disruptions/.
28. Nikkei Asia. "$2.6tn Could Evaporate from Global Economy in Taiwan Emergency," August 22, 2022. https://asia.nikkei.com/static/vdata/infographics/2-dot-6tn-dollars-could-evaporate-from-global-economy-in-taiwan-emergency/.
29. Panikkar. In Two Chinas: Memoirs of a Diplomat. London: George Allen & Unwin, 1955. https://ia601508.us.archive.org/4/items/in.ernet.dli.2015.65593/2015.65593.In-Two-Chinas-Memoirs-Of-A-Diploma_text.pdf.
30. Doc. 0060, Prime Minister's note to Foreign Secretary, December 30, 1948. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 1. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 93.
31. Doc. 0080, Letter from Prime Minister to Ambassador in the United States Vijayalakshmi Pandit, New Delhi, July 1, 1949. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 1. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018).
32. Note by C.S. Jha [Joint Secretary, Ministry of External Affairs], 15 October 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
33. Doc. 0115, Note by the Prime Minister, November 17, 1949. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 1. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 182-184.
34. Note handed to K.P.S. Menon [Foreign Secretary, Ministry of External Affairs] by Frank Roberts [Deputy High Commissioner of the UK to India], 23 August 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
35. Aide-Memoire given to K.P.S. Menon in New Delhi, 10 October 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
36. Letter from G.S. Bajpai [Secretary-General, Ministry of External Affairs] to K.P.S. Menon, 26 October 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
37. Telegram from Vijayalakshmi Pandit [India's Ambassador to the United States and Mexico] to G.S. Bajpai New Delhi, 02 December 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi
38. Text of message from the Commonwealth Relations Office received by the British High Commissioner in India and transmitted to the Government of India, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
39. Doc. 0129, Telegram from Foreign New Delhi to Hicomind London, December 18, 1949. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 1. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 203.

40. "Memorandum, Conversation of Mao and USSR Ambassador to China N.V. Roshchin on 1 January 1950", January 1, 1950, Wilson Center Digital Archive, Archive of Foreign Policy, Russian Federation (AVP RF), Moscow, f. 0100, op. 43, d. 10, papka 302, ll. 1-4. Contributed by Odd Arne Westad and translated by Daniel Rozas. https://digitalarchive.wilsoncenter.org/document/110404.
41. Letter from Jawaharlal Nehru for Chow En-Lai [Minister for Foreign Affairs of the People's Republic of China], December 30, 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
42. "सुरक्षा परिषद के कश्मीर मुद्दे पर विचार के ऊपर मान्यता देने के असर की वजह से मैंने चुने गए समय के व्यावहारिक महत्व पर ज़ोर दिया है... हम कश्मीर पर अपने दृष्टिकोण के प्रति एक प्रतिकूल रवैये का खतरा उठा सकते हैं, ना सिर्फ चीन के स्थायी प्रतिनिधि की तरफ से बल्कि बाकी सभी की तरफ से भी, और यह खतरा वास्तविक है।" See Note by G.S. Bajpai, 19 November 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
43. विदेश मंत्रालय में चीन के साथ संबंधों के प्रभारी संयुक्त सचिव सी.एस. झा ने एक नोट में दर्ज किया कि "एक मित्रवत चीन हमारी सुरक्षा के लिए सबसे ज़रूरी है।" See Note by C.S. Jha, 15 October 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
44. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 142-144.
45. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 29-30.
46. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 109-110.
47. Power and Diplomacy: India's Foreign Policies During the Cold War. 1st edition. (New Delhi: Oxford University Press, 2018). 143-190.
48. Prime Minister's Speech in Foreign Affairs Debate, 26 August 1954, Statements by Mr Nehru and others on Indian foreign policy: political relations between India and China; attitude towards foreign possessions in India, July-December 1954 (Folder 2), 1954, FO 371/112197, Foreign Office Files for India, Pakistan and Afghanistan, 1947-1964, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_112197.
49. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 100.
50. Chaudhuri, Rudra. Forged in Crisis: India and the United States Since 1947. 1st edition. (New York: Oxford University Press, 2014). 52.
51. Chaudhuri, Rudra. Forged in Crisis: India and the United States Since 1947. 1st edition. (New York: Oxford University Press, 2014). 53.
52. Chaudhuri, Rudra. Forged in Crisis: India and the United States Since 1947. 1st edition. (New York: Oxford University Press, 2014). 61.
53. Chaudhuri, Rudra. Forged in Crisis: India and the United States Since 1947. 1st edition. (New York: Oxford University Press, 2014). 76.
54. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 167.

55. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 311-327.
56. "Minutes of the First Meeting between Premier Zhou Enlai and Nehru", October 19, 1954, Wilson Center Digital Archive, PRC FMA 204-00007-03, 14-26. Obtained by Chen Jian and translated by 7Brands. https://digitalarchive.wilsoncenter.org/document/121746.
57. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 4: 1954-1957. Vol. 4. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1988). 71-87.
58. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 184.
59. Madan, Tanvi. Fateful Triangle: How China Shaped US-India Relations During the Cold War. (Gurgaon: Penguin Random House, 2020). 61.
60. "Cable from Zhou Enlai, 'Premier's Intentions and Plans to Visit India'", June 22, 1954, Wilson Center Digital Archive, PRC FMA 203-00005-01, 3-4. Translated by Jeffrey Wang. https://digitalarchive.wilsoncenter.org/document/112437.
61. Prime Minister's Speech in Foreign Affairs Debate, 26 August 1954, Statements by Mr Nehru and others on Indian foreign policy: political relations between India and China; attitude towards foreign possessions in India, July-December 1954 (Folder 2), 1954, FO 371/112197, Foreign Office Files for India, Pakistan and Afghanistan, 1947-1964, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_112197.
62. Prime Minister's Speech in Foreign Affairs Debate, 26 August 1954, Statements by Mr Nehru and others on Indian foreign policy: political relations between India and China; attitude towards foreign possessions in India, July-December 1954 (Folder 2), 1954, FO 371/112197, Foreign Office Files for India, Pakistan and Afghanistan, 1947-1964, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_112197.
63. Doc. 0751, Chinese Version of Talks between Nehru & Mao Tse-tung, Peking, October 19, 1954, Minutes: Chairman Mao Zedong's first meeting with Nehru, October 19, 1954, Zhongnanhai, Qinzhengdian, source: Chinese Foreign Ministry Archive 204-00007-01. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 2. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 1292.
64. Doc. 0749, Summary of Prime Minister's Talks with Mao Tse-tung (Indian Version), Peking, October 19, 1954, India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 2. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 1276-77.
65. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 4: 1954-1957. Vol. 4. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1988). 71-87.
66. कथित रूप से माओ ने कहा था: "संक्षेप में, यह सबसे अच्छा है कि कोई युद्ध ना लड़ा जाए। अगर हम आइज़नहावर के चीफ़-ऑफ-स्टाफ के तौर पर काम कर सकें, वो अपने सलाहकारों से घिर रहने की बजाय हमारी बात सुनेंगे। प्रधानमंत्री नेहरू इस काम को करने के लिए हमसे बेहतर स्थिति में हैं।" See Doc. 0751, Chinese Version of Talks between Nehru & Mao Tse-tung, Peking, October 23, 1954, Minutes, Chairman Mao Zedong's second meeting with Nehru, October 23, 1954, source: Chinese Foreign Ministry Archive 204-00007-15 (1). India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 2. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 1312.

67. "Minutes of the First Meeting between Premier Zhou Enlai and Nehru", October 19, 1954, Wilson Center Digital Archive, PRC FMA 204-00007-03, 14-26. Obtained by Chen Jian and translated by 7Brands. https://digitalarchive.wilsoncenter.org/document/121746.
68. Note by K.P.S. Menon, 25 August 1949, File 710(2)CJK/49, Ministry of External Affairs, Public Records, The National Archives of India, New Delhi.
69. Telegram from Foreign Office to British Embassy in Washington, 4 November 1954, United States policy towards Nationalist Chinese in Formosa (Taiwan): situation in Quemoy (Kinmen); resolution before United Nations Security Council; UK position, November 1954 (Folder 7), FO 371/110237, Foreign Office Files for China, 1949-1956, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO371-110327_FOLDER_7.
70. For details, see Madan, Tanvi. Fateful Triangle: How China Shaped US-India Relations During the Cold War. Gurgaon: Penguin Random House, 2020.
71. Madan, Tanvi. Fateful Triangle: How China Shaped US-India Relations During the Cold War. Gurgaon: Penguin Random House, 2020.
72. Doc. 0758, Press Conference of Prime Minister Jawaharlal Nehru on return from his visit to China, New Delhi, November 13, 1954, India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 2. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 1276-77.
73. Telegram from Washington to the British Foreign Office, 5 November 1954, United States policy towards Nationalist Chinese in Formosa (Taiwan): situation in Quemoy (Kinmen); resolution before United Nations Security Council; UK position, November 1954 (Folder 7), FO 371/110237, Foreign Office Files for China, 1949-1956, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO371-110327_FOLDER_7
74. Telegram from Washington to the British Foreign Office, 6 November, 1954, United States policy towards Nationalist Chinese in Formosa (Taiwan): situation in Quemoy (Kinmen); resolution before United Nations Security Council; UK position, November 1954 (Folder 7), FO 371/110237, Foreign Office Files for China, 1949-1956, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO371-110327_FOLDER_7.
75. जब संयुक्त राष्ट्र के महासचिव ने नेहरू से चीन की अपनी प्रस्तावित यात्रा के बारे में सलाह लेनी चाही, संयुक्त राष्ट्र में अमेरिका के प्रतिनिधि हेनरी कैबोट लॉज जूनियर ने कहा, "नेहरू से सलाह लेने की कोई ज़रूरत नहीं जो शायद इस यात्रा के ख़िलाफ़ सलाह देंगे।". See Foreign Relations of the United States, 1952-1954, China and Japan, Volume XIV, Part 1, eds. David W. Mabon and Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1985). Document 437. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1952-54v14p1/d437.
76. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 4: 1954-1957. Vol. 4. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1988). 127.
77. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 129. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d129.
78. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 157. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d157.

79. Telegram for Prime Minister from the Secretary of State for Foreign Affairs, 25 February 1955, United States Policy towards Nationalist Chinese in Formosa (Taiwan); position of Quemoy (Kinmen) and Matsu islands; discussions on future with Communist Chinese; UK and Commonwealth views on future of Formosa, February - March 1955 (Taiwan) (Folder 18), FO 371/115040, Foreign Office Files for China, 1949-1956, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO371-115040_FOLDER_18.
80. G.L. Mehta [India's Ambassador to the United States]'s Letter to Jawaharlal Nehru, December 1, 1954, File 1, G.L. Mehta Papers, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.
81. Doc. 0794, Extracts from the minutes of the Commonwealth Prime Ministers' Conference held in London, January 31, 1955, India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 2. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 1438.
82. Telegram from the Secretary of State for External Affairs of Canada to the Canadian High Commissioner in London, 21 February 1955, United States Policy towards Nationalist Chinese in Formosa (Taiwan); position of Quemoy (Kinmen) and Matsu islands; discussions on future with Communist Chinese; UK and Commonwealth views on future of Formosa, February - March 1955 (Taiwan) (Folder 18), FO371/115040, Foreign Office Files for China, 1949-1956, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO371-115040_FOLDER_18.
83. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 4: 1954-1957. Vol. 4. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1988). 132.
84. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 165. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d165.
85. Telegram from UK High Commissioner in India reporting on speeches by Nehru and Krishna Menon in the Lok Sabha and Rajya Sabha respectively on 25-26 February 1955, United States Policy towards Nationalist Chinese in Formosa (Taiwan); position of Quemoy (Kinmen) and Matsu islands; discussions on future with Communist Chinese; UK and Commonwealth views on future of Formosa, February - March 1955 (Taiwan) (Folder 18), FO 371/115040, Foreign Office Files for China, 1949-1956, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO371-115040_FOLDER_18.
86. G.L. Mehta [India's Ambassador to the United States]'s Letter to Jawaharlal Nehru, March 17, 1955, File 1, G.L. Mehta Papers, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.
87. भारतीय राजदूत ने गौर किया था कि राष्ट्रपति आइज़नहावर ने कुछ अनौपचारिक सवाल पूछे।
88. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 193. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d193.
89. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 197. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d197.
90. Telegram from Trevelyan, Beijing to the Foreign Office, London, Record of Interview with Chou En-lai, 28 February 1955, United States Policy towards Nationalist Chinese in Formosa (Taiwan); position of Quemoy (Kinmen) and Matsu islands; discussions on future with Communist Chinese; UK and Commonwealth views

on future of Formosa, February - March 1955 (Taiwan) (Folder 18), FO 371/115040, Foreign Office Files for China, 1949-1956, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO371-115040_FOLDER_18.

91. Xia, Yafeng. "Negotiating the Return of Civilians: Chinese Perception, Tactics and Objectives at the First Fourteen Meetings of the Sino-American Ambassadorial Talks." Working Paper. Cold War International History Project. Washington, D.C.: Woodrow Wilson International Center for Scholars, February 2021. https://www.wilsoncenter.org/sites/default/files/media/uploads/documents/CWIHP_Working_Paper_95_Sino-American_Ambassadorial_Talks_%28February_2021%29.pdf; Reference Zhou Enlai waijiao wenxuan [Selected Diplomatic Papers of Zhou Enlai] (Beijing: Zhongyang Wenxian Chubanshe, 1990), 134.
92. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 4: 1954-1957. Vol. 4. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1988). 168-169.
93. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 234. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d234.
94. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 244. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d244.
95. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 257. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d257.
96. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 259. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d259.
97. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 270. https://history.state.gov/historicaldocuments/ frus1955-57v02/d270.
98. Note regarding conversation with Secretary of State Dulles on 1st July, 1955, at 4 P.M. at the State Department, File 1, G.L. Mehta Papers, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.
99. Note regarding Krishna Menon and G.L. Mehta's Meeting with President Eisenhower at the White House on 6th July, 1955, at 4:15 P.M., File 1, G.L. Mehta Papers, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.
100. शुरुआती जुलाई में, डलेस ने (नए) ब्रिटिश विदेश सचिव हैरोल्ड मैकमिलन को यह कहने के लिए लिखा कि अमेरिका चाऊ के बातचीत की पेशकश मानने के लिए तैयार है, लेकिन "यह नहीं चाहता कि इस मामले में नेहरू हमारे मध्यस्थ के रूप में रहें…." See Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 291. https://history.state. gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d291.
101. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 288. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d288.
102. "Minutes of Conversation between Premier Zhou Enlai and British Charge d'Affaires Humphrey Trevelyan", May 26, 1955, Wilson Center Digital Archive, PRC FMA 207-00010-16, 61-69. Translated by Yafeng Xia, https://digitalarchive.wilsoncenter.org/document/110837.

103. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 4: 1954-1957. Vol. 4. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1988). 174.
104. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 4: 1954-1957. Vol. 4. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1988). 235-37.
105. ब्रिटिश प्रधानमंत्री हैरोल्ड मैकमिलन को नेहरू ने कहा: "…सुदूर पूर्व में एक संकट ने हमें चौंका दिया है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि यह गंभीर खतरे की परिस्थिति है और संबंधित पक्षों द्वारा रोज़ दुर्भाग्यपूर्ण धमकियां और जवाबी धमकियां दी जा रही हैं। इस समस्या की जड़ में जो कुछ भी हो, मुझे इस बात का यकीन है कि इस तरह के रवैये से कुछ अच्छा नहीं निकल सकता।" See Letter from High Commissioner of India to the UK to the British Prime Minister Sir Harold MacMillan conveying a message from Prime Minister Nehru, 7 September 1958, Defence of Formosa (Taiwan) against China, September 1958 (Folder 10), FO 371/133531, Foreign Office Files for China, 1957-1966, The National Archives, Kew. https://www. archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_133531..
106. Letter from High Commissioner of India to the UK to the British Prime Minister Sir Harold MacMillan conveying a message from Prime Minister Nehru, 7 September 1958, Defence of Formosa (Taiwan) against China, September 1958 (Folder 10), FO 371/133531, Foreign Office Files for China, 1957-1966, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_133531.
107. "Memorandum of Conversation: Premier Zhou Receives Indian Ambassador to China Parthasarathy", September 30, 1958, Wilson Center Digital Archive, PRC FMA 110-00713-02. Translated by Anna Beth Keim, https://digitalarchive.wilsoncenter.org/document/116576.
108. "Meeting Minutes, Zhou Enlai's Conversation with S.F. Antonov on the Taiwan Issue (excerpt)", October 5, 1958, Wilson Center Digital Archive, Zhou Enlai waijiao wenxuan (Selected Works of Zhou Enlai on Diplomacy) (Beijing: Zhongyang wenxian chubanshe, 1990), 262-267, https://digitalarchive.wilsoncenter.org/document/117018.
109. लगभग इसी समय चीनी जनवादी गणराज्य ने यह आरोप भी लगाया था कि तिब्बत में अमेरिका और च्यांग काई-शेक द्वारा चलाई जा रही विध्वंसक गतिविधियों में भारत भी शामिल है, और उन्हें भारतीय इलाके से काम करने की अनुमति दे रखी है। See Doc. 1040, Note given by the Foreign Office of China to the Counsellor of India, in Peking, 10 July, 1958. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 3. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 1899-1901.
110. Halperin, Morton H. "The 1958 Taiwan Straits Crisis: A Documented History." Research Memoranda. RAND Corporation, 1966. https://www.rand.org/pubs/research_memoranda/RM4900.html. 185-86.
111. Halperin, Morton H. "The 1958 Taiwan Straits Crisis: A Documented History." Research Memoranda. RAND Corporation, 1966. https://www.rand.org/pubs/research_memoranda/RM4900.html. 329-30.
112. Foreign Relations of the United States, 1958-1960, United Nations and General International Matters, Volume II, eds. Suzanne E. Coffman and Charles S. Sampson (Washington: Government Printing Office, 1991), Document 37. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1958-60v02/d37.
113. इस रिकॉर्ड का एक हिस्सा संपादित किया गया है और इसलिए यह अनुमान लगाया गया है कि चाऊ के साथ बैठक में जिस 'व्यक्ति' का उल्लेख किया जा रहा था, वह पार्थसारथी थे। इस दस्तावेज़ में अन्य विवरण स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचाते हैं।See Foreign Relations of the United States, 1958-1960, China, Volume XIX, ed. Harriet Dashiell Schwar, (Washington: Government Printing Office, 1996), Document 148. https://history.state.gov/ historicaldocuments/frus1958-60v19/d148.
114. Foreign Relations of the United States, 1958-1960, China, Volume XIX, ed. Harriet Dashiell Schwar, (Washington: Government Printing Office, 1996), Document 148. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1958-60v19/d148.

115. Foreign Relations of the United States, 1958-1960, China, Volume XIX, ed. Harriet Dashiell Schwar, (Washington: Government Printing Office, 1996), Document 154. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1958-60v19/d154.
116. Halperin, Morton H. "The 1958 Taiwan Straits Crisis: A Documented History." Research Memoranda. RAND Corporation, 1966. https://www.rand.org/pubs/research_memoranda/RM4900.html. 515-516.
117. Outward Telegram from Commonwealth Relations Office to Canberra containing text of message from Prime Minister MacMillan to Australian Prime Minister Robert Menzies, 3 October 1958, Defence of Formosa (Taiwan) against China, September - October 1958 (Folder 16), FO 371/133537, Foreign Office Files for China, 1957-1966, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_133537.
118. "श्रीमान डलेस ने इस मामले के शुरुआती चरणों में भारतीयों को शामिल करने के लिए विशेष रूप से कोई बड़ा उत्साह नहीं दिखाया है।" See 'Notes contained in file "Suggestions that Mr. Malcolm MacDonald might seek a personal interview with Mr. Nehru to obtain his reactions to the Formosa situation. Prior consultations with the Americans', Defence of Formosa (Taiwan) against China, November 1958 (Folder 23), FO 371/133544, Foreign Office Files for China, 1957-1966, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect. amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_133544.
119. Telegram from the British Foreign Secretary Selwyn Lloyd to the British Ambassador in Washington, November 7, 1958, Defence of Formosa (Taiwan) against China, November 1958 (Folder 23), FO 371/133544, Foreign Office Files for China, 1957-1966, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_133544
120. "Chapter 5: Case II: Geneva and Warsaw." In The Chinese at the Negotiating Table: Style and Characteristics, by Alfred D. Wilhelm Jr. (Washington, D.C.: National Defense University Press, 1994). 162-163.
121. "Chapter 5: Case II: Geneva and Warsaw." In The Chinese at the Negotiating Table: Style and Characteristics, by Alfred D. Wilhelm Jr. (Washington, D.C.: National Defense University Press, 1994). 184-185.
122. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 234. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d234
123. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 305. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d305.
124. Foreign Relations of the United States, 1955-1957, China, Volume II, Harriet D. Schwar (Washington: Government Printing Office, 1986). Document 274. https://history.state.gov/historicaldocuments/frus1955-57v02/d274.
125. अनौपचारिक सूत्रों के मुताबिक हो सकता है कि कुछ गुप्त संपर्क मौजूद रहे हों। पूर्व भारतीय विदेश सचिव एम.के. रसगोत्रा याद करते हैं कि 1980 के दशक के उत्तरार्ध में उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के मुख्यालय में कुओमिंतांग के साथ पार्टी स्तर की कुछ बैठकों में हिस्सा लिया था। स्रोत: भारत के पूर्व विदेश सचिव एम.के. रसगोत्रा के साथ लेखक की बातचीत।
126. Author's conversation with anonymous official.
127. Khanna, Vinod C. "The India-Taipei Association: A Mission Extraordinaire." Indian Foreign Affairs Journal 5, no. 2 (2010): 240–51. https://www.jstor.org/stable/45341777.

128. खन्ना ने बाद में कहा कि ताइपे पहुंचते ही उन्हें तुरंत समझ में आ गया कि वहां दफ्तर खोलने और भारत में ताइवानी निवेश होने में कोई सीधा संबंध नहीं था।
129. Khanna, Vinod C. "The India-Taipei Association: A Mission Extraordinaire." Indian Foreign Affairs Journal 5, no. 2 (2010): 240–51. https://www.jstor.org/stable/45341777.
130. 1995 से जुलाई 2003 तक भारत ने सिर्फ भारतीय विदेश सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारियों को नियुक्त किया था। लेखक इंडिया-ताइपे एसोसिएशन के महानिदेशक के रूप में नियुक्त होने वाले पहले सेवारत अधिकारी थे।
131. "Sino-India Relations Including Doklam, Border Situation and Cooperation in International Organizations." New Delhi: Committee on External Affairs (2017-2018), Sixteenth Lok Sabha, Government of India, September 4, 2018. 7-8. https://eparlib.nic.in/bitstream/123456789/779992/1/16_External_Affairs_22.pdf#search=Twenty%20second%20report%20of%20the%20committee%20on%20external%20affairs%202017%202018%20sino%20india.
132. "Sino-India Relations Including Doklam, Border Situation and Cooperation in International Organizations." New Delhi: Committee on External Affairs (2017-2018), Sixteenth Lok Sabha, Government of India, September 4, 2018. 7-8. https://eparlib.nic.in/bitstream/123456789/779992/1/16_External_Affairs_22.pdf#search=Twenty%20second%20report%20of%20the%20committee%20on%20external%20affairs%202017%202018%20sino%20india.
133. Pant, Harsh V., and Shashank Mattoo. "India's Taiwan Moment." Foreign Policy, August 19, 2022. https://foreignpolicy.com/2022/08/19/india-taiwan-diplomacy-politics-economics-shipping-semiconductor/.
134. Parthasarathi, G., ed. Jawaharlal Nehru, Letters to Chief Ministers, Volume 2: 1950-1952. Vol. 2. 5 vols. (New Delhi: Oxford University Press, 1985). 4-5.
135. Doc. 0162, Telegram from Charge d'Affaires, Peking to Foreign, New Delhi, March 15, 1950. IndiaChina Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 1. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 249-250.
136. Doc. 0138, Telegram from Foreign, New Delhi to Bharat, Nanking, December 29, 1949. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 1. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 214-215.
137. Doc. 0142, Telegram from Bharat, Nanking to Foreign, New Delhi, January 06, 1950. India-China Relations 1947-2000 - A Documentary Study. Vol 1. 5 vols. Ed. A.S. Bhasin. (New Delhi: Geetika Publishers. 2018). 222.
138. "भारतीय पक्ष यह याद करता है कि भारत उन शुरुआती देशों में था जिन्होंने एक चीन नीति को मान्यता दी थी और कि इसकी एक चीन नीति अपरिवर्तित रही है। भारतीय पक्ष कहता है कि यह अपनी एक चीन नीति का पालन करना जारी रखेगा।"
139. For details about China's India policy, refer to Gokhale, Vijay. "A Historical Evaluation of China's India Policy: Lessons for India-China Relations." Carnegie India, December 13, 2022. https://carnegieindia.org/2022/12/13/historical-evaluation-of-china-s-india-policy-lessons-for-india-china-relations-pub-88621.
140. Bagchi, Indrani. "India Talks Tough on One-China Policy, Says Reaffirm One-India Policy First." *The Times of India*, September 9, 2014. https://timesofindia.indiatimes.com/india/india-talks-tough-on-one-china- policy-says-reaffirm-one-india-policy-first/articleshow/42060331.cms
141. मई 2019 में, राष्ट्रपति सू सेंग-चांग को भी बताया गया था कि किस तरह इस नीति का मेल क्षेत्रीय देशों के भारत-प्रशांत दृष्टिकोण के साथ किया जा रहा है। See Executive Yuan. "New Southbound Policy." July 4, 2019. https://english.ey.gov.tw/News3/9E5540D592A5FECD/2ec7ef98-ec74-47af-85f2-9624486adf49.

142. ("दुनिया में एक ही चीन है। ताइवान चीन के इलाके का एक अविभाज्य हिस्सा है और चीनी जनवादी गणराज्य की सरकार पूरे चीन का प्रतिनिधित्व करने वाली एकमात्र वैध सरकार है।") See Ian, Chong Ja. "The Many 'One Chinas': Multiple Approaches to Taiwan and China." Carnegie Endowment for International Peace. Accessed March 15, 2023. https://carnegietsinghua.org/2023/02/09/ many-one-chinas-multiple-approaches-to-taiwan-and-china-pub-89003.
143. Ian, Chong Ja. "The Many 'One Chinas': Multiple Approaches to Taiwan and China." Carnegie Endowment for International Peace. Accessed March 15, 2023. https://carnegietsinghua.org/2023/02/09/ many-one-chinas-multiple-approaches-to-taiwan-and-china-pub-89003.
144. Prime Minister's Speech in Foreign Affairs Debate, 26 August 1954, Statements by Mr Nehru and others on Indian foreign policy: political relations between India and China; attitude towards foreign possessions in India, July-December 1954 (Folder 2), 1954, FO 371/112197, Foreign Office Files for India, Pakistan and Afghanistan, 1947-1964, The National Archives, Kew. https://www.archivesdirect.amdigital.co.uk/Documents/Details/FO_371_112197.
145. Ministry of Foreign Affairs of the People's Republic of China. "Wang Yi Meets with External Affairs Minister Sushma Swaraj of India," February 27, 2019. https://www.fmprc.gov.cn/mfa_eng/gjh-dq_665435/2675_665437/2711_663426/2713_663430/201903/t20190301_513285.html; Embassy of the People's Republic of China in the Kingdom of the Netherlands. "Foreign Ministry Spokesperson Lu Kang's Regular Press Conference on February 26, 2019," February 27, 2019. http://nl.china-embassy.gov.cn/eng/wjbfyrth/201902/t20190227_10046807.htm; Ministry of Foreign Affairs of the People's Republic of China. "Joint Communique of the 16th Meeting of the Foreign Ministers of the Russian Federation, the Republic of India And the People's Republic of China," February 27, 2019. https://www.mfa.gov.cn/eng/wjdt_665385/2649_665393/201902/t20190227_679558.html; Aneja, Atul. "China: Pathankot Attacks Aimed at Disrupting India-Pakistan Ties." The Hindu, January 4, 2016, sec. World. https://www.thehindu.com/news/international/China-Pathankot-attacks-aimed-at-disrupting-India-Pakistan-ties/article60521788.ece; The Indian Express. "Uri Attack: Avoiding Direct Reference to Pak, China Voices Concern over Rising Tensions in Kashmir." September 19, 2016. https://indianexpress.com/article/india/india-news-india/uriattack-avoiding-direct-reference-to-pak-china-voices-concern-over-rising-tensions-in-kashmir-3039335/;Hindustan Times. "'Friendly Neighbour' China Tells Pak, India: Work Jointly for Peace and Security." September 29, 2016. https://www.hindustantimes.com/india-news/friendly-neighbour-china-tells-pak-indiawork-jointly-for-peace-and-security/story-zt2uJ7dHrvL0g5kr4LSB7I.html.
146. *Hindustan Times*. "India Concerned about Taiwan Developments, Calls for de-Escalation of Tension," August 12, 2022. https://www.hindustantimes.com/india-news/india-concerned-about-taiwandevelopments-calls-for-restraint-101660302799666.html.
147. For a detailed analysis, see Gokhale, Vijay. "A Historical Evaluation of China's India Policy: Lessons for India-China Relations." Carnegie India, December 13, 2022. https://carnegieindia.org/2022/12/13/historical-evaluation-of-china-s-india-policy-lessons-for-india-china-relations-pub-88621.
148. Desai, Suyash. "Assessing the Role of the PLA Southern Theater Command in a China- India Contingency." Jamestown, February 17, 2023. https://jamestown.org/program/ assessing-the-role-of-the-pla-southern-theater-command-in-a-china-india-contingency/.

149. Cancian, Mark F., Matthew Cancian, and Eric Heginbotham. "The First Battle of the Next War: Wargaming a Chinese Invasion of Taiwan." CSIS | Center for Strategic & International Studies, January 9, 2023. https://www.csis.org/analysis/first-battle-next-war-wargaming-chinese-invasion-taiwan

150. "यह ताइवान, अमेरिका, जापान, और संभवतः भारत-प्रशांत क्षेत्र के अन्य साझीदारों पर निर्भर करेगा कि वे एक सैन्य प्रतिरोधी रुख तैयार करें जो असरदार और टिकाऊ हो।" See "Bridging the Gap: Priorities for Transatlantic China Policy." Washington, D.C., Berlin, and Munich: Aspen Strategy Group, the Mercator Institute for China Studies, and the Munich Security Conference, February 2023. https://www. aspeninstitute.org/wp-content/uploads/2023/02/ASG-MERICS-MSC-Report-2023-Bridging-the-Gap-final. pdf.

151. Gokhale, Vijay. "A Historical Evaluation of China's India Policy: Lessons for India-China Relations." Carnegie India, December 13, 2022. https://carnegieindia.org/2022/12/13/historical-evaluation-of-china-s-india-policy-lessons-for-india-china-relations-pub-88621.

152. Kumar, Amit. "China's Two-Front Conundrum: A Perspective on the India-China Border Situation." Occasional Paper. New Delhi: Observer Research Foundation, March 2023. https://www.orfonline.org/research/chinas-two-front-conundrum/.

153. Cancian, Mark F., Matthew Cancian, and Eric Heginbotham. "The First Battle of the Next War: Wargaming a Chinese Invasion of Taiwan." CSIS | Center for Strategic & International Studies, January 9, 2023. https://www.csis.org/analysis/first-battle-next-war-wargaming-chinese-invasion-taiwan.

154. "Bridging the Gap: Priorities for Transatlantic China Policy." Washington, D.C., Berlin, and Munich: Aspen Strategy Group, the Mercator Institute for China Studies, and the Munich Security Conference, February 2023. https://www.aspeninstitute.org/wp-content/uploads/2023/02/ASG-MERICS-MSC-Report-2023- Bridging-the-Gap-final.pdf

155. Cancian, Mark F., Matthew Cancian, and Eric Heginbotham. "The First Battle of the Next War: Wargaming a Chinese Invasion of Taiwan." CSIS | Center for Strategic & International Studies, January 9, 2023. https://www.csis.org/analysis/first-battle-next-war-wargaming-chinese-invasion-taiwan. Coexistence As Norms." The Selected Works of Deng Xiaoping, December 21, 1988. https://dengxiaopingworks.wordpress.com/2013/03/18/a-new-international-order-should-be-established-with-the-five-principles-of-peaceful-coexistence-as-norms/.

CARNEGIE INDIA

CarnegieIndia.org